चरैवेति

(स्फुट विचार संग्रह)

लेखक

रामाश्रय तिवारी

पूर्व उप परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण - 2021

© लेखक

रामाश्रय तिवारी
पूर्व उप परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

प्रकाशकः
रामाश्रय तिवारी
117 सी, टैगोर टाउन, प्रयागराज
मूल्य : 200/-

मंगलाचरण

अनुशासनेन लोकेऽस्मिन् बुद्धेः परिशोधनम्।
ज्ञानेन परलोकार्थे आत्मतत्वप्रकाशनम् ।।
यस्यार्चनफलम् अस्ति गुरुमूर्तिं नतोऽस्मि तम् ।
कृतेर्भावार्थज्ञानाय विदधातु शुभां मतिम् ।।

विषय सूची

1. वैयक्तिक

प्रकरण संख्या

1,2,5,6,10,13,14,16,17,18,21,25,28,29,37,40,44,46,
49,51,63,72,73,74,79,81,84,86,91,98,99,102,103,106,
110,111,112,114,116,120,123,125,140,141,142,149,
164.

2. सामाजिक

प्रकरण संख्या

3, 4,7,9,11,15,19,20,23,26,27,35,41,45,48,53,54,55,
56,57,59,61,62,64,67,71,80,88,89,90,92,94,95,96,97,
100,104,107,108,109,113,115,117,119,122,124,126,
127,134,135,136,137,138,139,143,144,145,146,150,
152,154,159,162,163,164,166,167,168,169

3. राजनैतिक

प्रकरण संख्या

8,12,22,24,30,31,32,33,34,36,38,39,42,43,47,50,52,5
8,60,65,66,68,69,70,75,76,77,78,82,83,85,87,93,101,
105,118,121,128,129,130,131,132,133,147,148,153,1
55,156,157,158,160,161

आत्म निवेदन

बन्दे शिवं गुरुं साक्षात् दक्षिणमूर्तिरूपिणम्।
सृष्टिस्थितिलयास्तुर्यः यस्मिन् स्वाभाविकी गतिः।

मनुष्य के स्वभाव मे सात्विक, राजस एवं तामस प्रवृत्तियों का विकास और ह्रास होता रहता है। पूर्वजन्म के संस्कारों तथा वर्तमान में शास्त्र, संगति और क्रिया-कलापों के प्रभाव से तीनों गुणों की मात्रा और प्रबलता स्पष्ट होती रहती है।गीता में इस बात का सुस्पष्ट विवेचन है। यह भी बताया गया है जिस गुण की वृद्धि के काल में मनुष्य की मृत्यु होती है उसी के अनुसार अगली योनि में जन्म होता है। ''यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहमृत्। तदोत्तमविदांल्लोकानमलान् प्रतिपद्यते।। रजंसि प्रलयं गात्वा कर्मयोनिषु जायते। तथा मलीनस्तमसि मूढ़योनिषु जायते।।''

इस मान्यता को आदर देते हुए व्यक्ति को अपना अन्तिम समय शास्त्र सम्मत ढंग से पूर्ण व्यवस्थित रखना चाहिए। मृत्यु को संवारना चरम धर्म है। तीनों गुणों से अस्पृष्ट (आत्मरत) व्यक्ति का पुनर्जन्म होता ही नहीं। यह स्थित अनेक जन्म की साधना से आती है। सत्वस्थ रहकर अन्तिम समय बिताना आदर्श है। अगर वह भी नहीं सधता है तो रजोगुण का प्रवाह अवश्य होता रहे। अन्यथा होने पर निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि से अभिभूत होकर मरने पर मूढ़ योनि मे जन्म होता है। पतन के क्रम में यह निम्नतम स्तर है, ऐसा शास्त्रों का मत है।

उपर्युक्त सिद्धान्त को दृष्टिमें रखकर, अपने भावी जीवन के लिए योजना बनाना बुद्धिमानी है।बुद्धि का प्रयोग बन्द करके मनचाहे मार्ग से चलने पर पतन का क्रम आरम्भ हो जाता है। अपने विषय में चिन्तन करने पर, यह बातें, भविष्य के विषय में निर्णय करने में सहायक है। इसके साथ ही एक विशेष कार्य पूरा करने के लिए समय का उपयोग करना उचित लगता है। श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साहित्य प्रदान करने का हमारा संकल्प संस्था की स्थापना के समय से ही बना था। राजकीय सेवा के समय इन विषयों पर अध्ययन करते रहे हैं। कुछ लेखन भी किया था। सेवानिवृत्त होकर लेखन के कार्य को प्रगति दी गयी। संस्था के लिए उपयोगी सात ग्रन्थों का प्रणयन किया जा चुका है। इनके प्रकाशन की व्यवस्था करके संस्था को साहित्यिक आधार प्रदान करने का संकल्पित दायित्व बहुत हद तक पूर्ण किया गया। प्रचार-प्रसार तथा कार्यान्वयन के कार्य चलते रहेंगे। आगे, शारीरिक क्षमता, नेत्र ज्योति आदि को दृष्टिमें रखकर सहज रूप में सम्पन्न होने वाला कार्य करना ही संभव है। इसके अलावा जीवन के अन्त को सात्विक रखना भी आवश्यक है।

अतः सामयिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं के निराकरण और आध्यात्मिक साधना में सहायक चिन्तन को लिखना एवं प्रकाशित करते रहना ही वर्तमान में स्वधर्म बना लिया है। जीवनयापन की इस विधा से कई लाभ है। एक तो समय सात्विक चिन्तन में बीतता है, दूसरे, सन्देशों को पढ़ने से व्यक्ति तथा समाज लाभान्वित होंगे। इसके अलावा अपनी लिखी हुई पुस्तकों में न्यूनता की पूर्ति करना तथा अपनी मानसिक स्थिति

में परिवर्तन की दिशा का ज्ञान करना भी इससे संभव है। इस तरह निजी हित साधन होना संभावित है। सात्विकता तथा नैतिकता के प्रति प्रेरणा और वैचारिक क्रान्ति, यह समाज के लिए लाभप्रद होने वाले दो लक्ष्य भी इस लेखन से संभव है।

'चरन्वै मधु विन्दति' चलते रहने पर शुभ होता है, यह मान्यता हे। गत्यर्थक धातुएँ ज्ञानार्थक भी होती है। चरवैति का आदर्श ज्ञान प्राप्ति में भी सहायक होता है। इससे विचारों में सुबद्धता बनी रहती है। अपने सिद्धान्त का संशोधन भी इससे संभव है। इस तरह के विचारों से अपने निश्चय को दृढ़ करके लघु सन्देशों के रूप में लिखते रहना उपयोगी समझता हूँ। सन्देशों को फेस बुक से एकत्र करके पुस्तकाकार करने पर, विचारों को स्थायित्व दिया जासकता है।

इस लेखन का उद्देश्य और प्रेरणा स्रोत, ऊपर लिखा गया। यह स्पष्टतः स्वीकार किया जा रहा है कि इन सन्देशों को संक्षेप में निश्चयात्मक ढंग से प्रस्तुत कर दिया गया है। निर्णय लेने के लिए तर्क, उदाहरण, व्यवहार एवं उद्धरण देने का प्रयास नहीं किया गया है। ऐसा इसलिए किया गया कि सन्देश का आकार छोटा ही रहे जिससे पाठक को पढ़ने में ऊब न लगे। विस्तार करने पर इन्हीं सन्देशों को लेख के रूप में वृहदाकार किया जा सकता है।

लिखने की इस विधा की प्रेरणा तथा उसकी सुविधा प्रदान करने में चिरन्जीव त्र्यम्बक तिवारी (कुलदीप) पूर्ण रूप से सहायक रहे है।। उनसे सम्प्रेषण का कार्य आरम्भ किया। पुस्तकाकार प्रकाशन की व्यवस्था भी उन्हीं के अधीन है। इसके पूर्व की हमारी कृतियों के प्रकाशन में भी इनका सहयोग रहा है।पुत्र की प्रशंसा करना आत्मश्लाघा कही जाती है। अतः विशेष न कह कर उनको यशस्वी एवं चिरंजीवी होने का आशीर्वाद देता हूँ।पुस्तकों के प्रकाशन के समय पाण्डुलिपि को स्पष्टतर लिखकर प्रेस के योग्य बनाने में श्री समाकृष्ण तिवारी सहायक रहे है। उन्हें भूयशः धन्यवाद दिया जाता है। लेखन और प्रकाशन के कार्यों में सदैव सहयोगी रहने वाले अनुज प्रोफेसर जटाशंकर तिवारी को स्नेहाशीष देता हूँ।

चरैवेति का प्रकाशन पुस्तक के रूप में शीघ्र होने की संभावना है। छोटी पुस्तिका के रूप में दूसरा भाग भी प्रकाशित हो सकता है। अन्य भागों का लेखन हमारी कार्य क्षमता पर निर्भर करता है तथा इनका प्रकाशन पुत्रों के अधीन रहेगा। इस पुस्तक को लिखने से स्वार्थ, परमार्थ या परार्थ जो भी सिद्ध हो, ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है। कोई प्रत्यक्ष फल की कामना नहीं है। विमल बुद्धि की प्राप्ति के लिए वाग्देवी तथा सविता देवता को प्रणाम करते हुए आत्म निवेदन से विरत हो रहा हूँ।

रामाश्रय तिवारी

चरैवेति

[1]
'चित्त'

चित् तत्व परमेश्वर का ही रूप है। यह सत् (नाशरहित) है। इसी के सहज स्वरूप को आनन्द कहते हैं। इसीलिए सच्चिदानन्द, परमेश्वर का अभिधान है। चित् तत्व ही सृष्टिका निमित्त एवं उपादान कारण है।

इसी चित् तत्व से त्रिगुणात्मिका प्रकृति प्रगट होती है। यह जड़ होती है। चित् तत्व से वास्तविक विकार तो होता नहीं है। उसकी माया रूपी शक्ति ही मिथ्या विकार के रूप में प्रकट होती है। माया स्वतः में चैतन्य युक्त नहीं होती है किन्तु चित् तत्व के सम्पर्कसे वह भी चैतन्य युक्त दिखायी पड़ती है। अग्नि के सम्पर्क से लोहा भी आग जैसा हो जाता है। ईश्वर के रूप में होने पर चित् तत्व की शक्ति माया है। सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा के रूप में उसकी शक्ति और सामर्थ्य प्रकृति है तथा व्यक्ति के लिए चित्त है। प्रकृति भी चित् के सम्पर्कसे चैतन्य युक्त जैसी हो जाती है। समष्टि रूप से यही चित्त है।चित् तत्व से प्रभावित समस्त विश्व चित्त के रूप में ब्रह्मा को उपादान रूप में प्राप्त होता है। जड़ होने पर भी चित् तत्व के व्याप्त होने से चित्त नाम है। इसी को 'अप् एव ससर्जादौ' अर्थात् सृष्टि का आदिस्वरूप कहा जाता है। इसी के व्यष्टिरूप बुद्धितत्व के द्वारा प्राणियों की रचना की गयी है। यह समष्टिगत चित्त सभी प्राणी के सम्पर्क में उसी तरह रहता है जैसे बुलबुले के सम्पर्क में जलराशि रहती है। बुलबुला जीव का घर है, चित्त उसमें बुद्धि रूप से उपस्थित रहता है। बुद्धि चित्त से ही है किन्तु सीमित होने पर उससे भिन्न लगती है। चित्त की सामग्री बुद्धि के उपयोग के लिए सुलभ हो सकती है। व्यष्टि और समष्टि के भेद से या राशि एवं अल्पांश के रूप में बुद्धि और चित्त का सम्बन्ध जाना जा सकता है। जीवन की साधना में बुद्धि के सहारे ही चित्त का भी शोधन होता है। बुद्धि अविद्या जनित होने के कारण कृतकृत्य होने पर अपने कारण में लीन हो जाती है। चित्त ही उसका कारण है। उसी में बुद्धि लीन हो जाती है। अविद्या की समाप्ति पर जीव मुक्त होकर शुद्ध चित्त (ब्रह्म) हो जाता है। यह ग्रन्थि के खुलने का परिणाम है। चित्त अनन्त है तो बुद्धि की शक्ति भी अनन्त हो सकती है। साधक लोग चित्त जगत में उपस्थित लोक लोकांतर तथा त्रिकाल का दर्शन करने में समर्थ होते हैं। यह चित्त तथा उसके अंश बुद्धि दोनों की महिमा है। चित्त फ्रायड के अनकांसस माइन्ड की अपेक्षा अनन्त गुना बड़ा है। समस्त देश-काल इसमें समाहित है।

माया, प्रकृति,चित्त तथा बुद्धि यह चारों एक ही कोटि की सृष्टि है। उत्तर की अपेक्षा पूर्ववर्ती अधिक सूक्ष्म है। सूक्ष्म में स्थूल का लय हो जाता हैं। यह सभी अनन्त है जड़ है तथा चित् तत्व से प्रकाशित होकर ईश्वर से लेकर जीव तक के लिए शक्ति के रूप में हैं। अद्वैत के सिद्ध होने पर शक्ति और शक्तिमान एक ही है। महर्षि रमण ने इसी

स्थिति का वर्णन निम्नवत किया है–ज्ञानवर्जिताज्ञानहीन चित्। ज्ञानमस्ति कि ज्ञातु मन्तरम्।। (उपदेशसार)। अर्थात् जीव अपने से भिन्न ज्ञान तथा अज्ञान से रहित है। समस्त का ज्ञान होने पर ज्ञाता और ज्ञान एक ही हो जाते हैं। उस समय चित्त ही ब्रह्म हो जाता है।

[2]
प्रायश्चित

वासना और संस्कार दो शब्द सन्निकट अर्थ में प्रयोग किये जाते है किन्तु दोनों मे भेद है। वासना सूक्ष्म होती है जिसका प्रत्यक्ष नहीं हो पाता है। वासना स्थूल होने पर संस्कार के रूप में प्रत्यक्ष हो जाती है। स्मृति में प्रसुप्त संस्कार वासना है। जब किसी प्रेरक तत्व का सम्पर्क होता है तो स्मृति से वासना ही संस्कार के रूप में प्रत्यक्ष होती है। संस्कार के प्रकट होने पर उस पदार्थ को प्राप्त करने की कामना तथा विविध उपाय प्रगट होने लगते हैं। इस संस्कार को सतसंग से दवा देने पर पुनः वासना रूप में वह स्मृति में प्रसुप्त हो जाती है।

इस तरह से संस्कार को नियंत्रित करके अच्छे संस्कार को प्राप्त किया जाता है। किन्तु वासना रूप में यह जीवित रहता है। वासना का क्षय करने के लिए प्रायश्चित का विधान है। किसी पात्र में हींग रखने पर उसमें गन्धव्याप्त हो जाती है।हींग के न रहने पर उसकी वास बनी रहती है। यही वासना का स्वरूप है। कर्म के समाप्त होने पर इसकी वासना रह जाती है। अच्छी तरह बर्तन को साफ करने की भाँति, कर्मफल से उत्पन्न वासना को समापत करने के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है।

वासना को बज्रलेप कहा गया है। इसे तत्काल समाप्त न किया जाय तो परतदरपरत लेप मोटा होता जाता है। इसलिए प्रायश्चित को तत्काल किया जाता है। देर करने पर, उसी के कारण अनेक अन्य अपराध हो जाते हैं, ''(विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातो शतमुखः)।''

पापिष्ट भी तपस्या करके शक्ति प्राप्त कर सकता है। इससे उत्पन्न शक्ति से वह और अधिक पापराशि एकत्र करके युगों तक उसका फल भोगता है। इसीलिए पापिष्ट को शक्ति प्राप्ति के लिए तपस्या करने का अधिकार नहीं होता है।

प्रायश्चित न करने या अपराध के बदले राजदण्ड को स्वीकार करके, निष्पाप न होने पर यमदण्ड मिलता है। जब पाप का फल मिलने लगता है तो लोग ईश्वर या अन्य लोगों को दोष देते हैं जो अज्ञान के कारण किया जाता है। व्यक्ति या राजा पाप भोगने से बचा नहीं सकते हैं। किन्तु ऐसे लोगों पर सन्त लोग दया करते हैं। पापी को सन्मार्ग पर दृढ़ रहने के लिए संकल्प दिलाकर पापाचार से दूर करना ही उनके ऊपर दया है। सदगुरु या महापुरुष इस तरह का उपकार कर देते हैं। सन्मार्ग तथा सतसंगति के द्वारा प्रेरित होकर सदाचार का पालन करना तथा कष्टों को झेलते हुए भी व्रत में दृढ़ रहना भी प्रायश्चित है।

यह सब बातें उनके लिए है जो पुनर्जन्म और ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं तथा अपना उद्धार करते हैं। इसे न मानने पर, उत्तरोत्तर पतित होते हुए कीट-पतंग पशु-पक्षी, पेड़-पल्लव तक की योनि में जाना पड़ सकता है। कर्म का फल भोगना ध्रुव सत्य है। अतः प्रायश्चित द्वारा बुरे संस्कार और वासना को भी समाप्त करना श्रेयस्कर है।

[3]
राम और कृष्ण

राम के चरित्र पढ़ने पर आरम्भ से अंत तक मर्यादा की रक्षा, धार्मिक व नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, सम्बन्धों का निर्वाह आदि प्रत्यक्ष हैं। मनुष्य जिन साधनों का उपयोग करता है, उन्हीं का प्रयोग राम भी करते थे। अलौकिक तरीके से प्रभावित करने का आचरण उनका नहीं होता था। उनकी बुद्धि विवेक, मनस्विता, पराक्रम आदि इतने अथाह थे कि लोग बरबस प्रशंसक हो जाते थे। व्यवहार मृदु था जिससे शत्रु भी उनका अनुकरण करते थे। इन सब के कारण राम का चरित्र अनुकरणीय था। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहना सार्थक है। एक राजा के रूप में भी वे अतुलनीय हैं। सीता को त्यागने के बाद उनकी याद में भूसी की आग में जलने की तरह तप्त हृदय को भी लेकर उन्होंने प्रजापालन तथा नैतिक आदर्श का निर्वाह किया। पुनः विवाह न करके उन्होंने सीता के प्रति अपना अमिट प्रेम प्रमाणित किया। सत्य की रक्षा और धर्म पालन के लिए लक्ष्मण जैसे भाई का भी त्याग करके, लोक संग्रह की यज्ञ में आत्माहुति दे दिया। इतिहास में इतना महान चरित्र नहीं मिलता है।

कृष्ण का चरित्र आदि से अन्त तक रहस्यात्मक सिद्धियों के प्रदर्शन से भरा पड़ा है। उनका चरित्र सर्वथा बन्धन मुक्त है। किसी भी सम्बन्ध को प्रगाढ़ बनाना तथा तिनके की तरह उसका त्याग कर देना, उनका स्वभाव था। सम्मोहन शक्ति द्वारा सबको वश में कर लेना उनके लिए सहज था। बाल्यकाल के कृष्ण अद्‌भुत कार्यों और अपनी मोहिनी शक्ति के लिए विख्यात हैं। उन्होंने इस रूप को त्यागने के बाद पुनः इधर नहीं देखा। युवा एवं महाभारत के कृष्ण कूटनीति के महारथी थे। विवाह सम्बन्धों में परम्परा तथा मर्यादा का नहीं बल्कि स्वच्छन्दता को ही अपनाया था। जो चाहा वह सभी काम उन्होंने किसी न किसी तरह कियां। युधिष्ठिर से झूठ बोलवा दिया। केवल कर्ण एक ऐसा महामानव था जिसे कृष्ण भी समझाकर पाण्डवों के पक्ष में नहीं कर पाए। अन्यथा कहीं भी उन्हें अपने निश्चय में असफल नहीं पाया गया।जीवन के अन्तिम दिनों में द्वारका में अपने ही लोगों द्वारा ईर्ष्या-द्वेष तथा आज्ञा उल्लंघन को उन्हें देखना पड़ा।

कृष्ण के जीवन में सफलता के लिए मुख्य रूप से तीन कारण थे।एक तो रूप-लावण्य ऐसा था जिससे लोग मुग्ध हो जाते थे।दूसरे वाणी में इतनी शक्ति थी कि सभी को प्रभावित कर लेते थे। जो चाहते थे वही सिद्ध करना उनके वाणी की विशेषता थी। इनके साथ ही समय-समय पर पराक्रम प्रकट करना भी उनके लिए संभव था। इन तीनों शक्तियों के पीछे मूल शक्ति योग-सिद्धि थी। उन्हें योगेश्वर के रूप में जाना जाता है, यह बहुत सही आकलन है।

राम और कृष्ण के चरित्रों में तुलनात्मक विवेचन करने पर मिलता है कि–

(1) राम ने लोक मर्यादा का पालन और सामाजिक मूल्यों की स्थापना किया। कृष्ण ने इसके विपरीत आचरण करके सबको स्ववश बनाये रखा।

(2) राम ने मानवीय व्यवहार से लोगों को प्रभावित किया और कृष्ण ने अलौकिक आचरण से अपनी महत्ता स्थापित किया।

(3) राम का आचरण लोकोपयोगी है जबकि कृष्ण का आचरण केवल भक्तों के लिए आनन्द का स्रोत है। आचरणीय नहीं है।

(4) गीता का ज्ञान तो व्यास मुनि का है। उस ज्ञान का प्रयोग तो स्वयं कृष्ण और अर्जुन भी युद्ध के समय नही कर पाये है। राम और कृष्ण का सन्देश तो उनके आचरण से ही मिल सकता है। दोनों महापुरुषों के चरित्र में विरोधाभास लगता है किन्तु जनमानस में दोनों उपास्य रूप में मान्य हो गये हैं।

राम और कृष्ण दोनों में रूप-लावण्य तथा मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियाँ असामान्य थी।। राम का चरित्र बुद्धि प्रधान था। कृष्ण का चरित्र मनः प्रधान था। राम की शक्ति धर्मसे प्राप्त हुई थी, कृष्ण की शक्ति योग बल से प्राप्त थी। मन और बुद्धि में अन्तर होता है। वह अन्तर दोनों महापुरुषों के चरित्र में है। मानसिक सिद्धि बौद्धिक सिद्धि की अपेक्षा शीघ्रतर मिलती है।

बौद्धिक सिद्धि में स्थायित्व अधिक होता है। मन सूक्ष्म एवं चंचल होता है। इसके बिना कोई कार्य संभव नहीं है। ''यस्मान्न ऋते किन्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।'' बुद्धि व्यापक होती है और मन को भी अपने वश में करके परम सिद्धि तक पहुँचाती है। इन दोनों महापुरुषों के चरित्रों में मन और बुद्धि दोनों प्रबल दिखायी पड़ते हैं। प्रधानता के अन्तर से बहुत बड़ा अन्तर दिखायी पड़ता है। ईश्वर की महान विभूतियों में दोनों हैं। एक मर्यादा पुरुषोत्तम है जो लोक नायक है, दूसरे योगेश्वर है जो भक्तों के उपकारक हैं। एक की उपासना से लोक-परलोक दोनों की सिद्धि है तो दूसरे की उपासना से लोक और गोलोक में आवागमन का आनन्द है। सत्य तो यही है ईश्वर एक ही है। उपासना और उपास्य में भावनात्मक भेद से तदनुसार फल मिलता है। समय के अनुसार आचरण तथा मार्गदर्शन करना युगपुरुष का लक्षण है।

[4]
विभिन्न नीतियां

विभिन्न नीति और धर्माचरण के प्रेरक वाक्य, अलग-अलग स्वभाव के अनुसार ही अनुकूल होते हैं। अर्थ और काम मात्र को पुरुषार्थ मानने वाले को भी आचारः परमोधर्मः तो मानना ही चाहिए। जो श्रद्धा के कारण सदैव ईश्वर की स्मृति रखना चाहते हैं, उनके लिए 'विपदः सन्तु सर्वदा मान्य हो सकता है। धर्मभीरु लोगों के लिए ''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।।'' मानना उचित है। परोपकारी स्वभाव वाले साधु के लिए विद्या, धन और शक्ति का विनियोग ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय, मान्य है। योग का आदर्श 'समत्वं योग उच्यते' है। ज्ञान का आदर्श 'आत्मवत्सर्वभूतेष है। मोक्ष प्राप्ति के

लिए आदर्श 'सर्वोपरमः क्रियाभिः' है।वैसे सब के लिए जन्म लेने की सार्थकता के लिए स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम् को प्रेरक मानना हितकर है। कुछ नीतियाँ सब के लिए आवश्यक है।कुछ स्वभाव और स्वधर्म के अनुसार निर्धारित होती है।

[5]
आत्मा की रक्षा

आत्मानं सततं रक्षेत् पुत्रैः दारैः धनैरपि। आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् । इन वाक्यों का तात्पर्य है कि आत्मा की रक्षा के लिए पुत्र, स्त्री, धन तथा समस्त पृथ्वी को छोड़ देना उचित है। इन वाक्यों का सही तात्पर्य समझना श्रेयष्कर है। आत्मा शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है। जिन पदार्थों के आधार पर या जिनके लिए जीवन धारण किया जाता है, वे भी सामान्य प्रयोग में आत्मा कहे जाते हैं। अतः स्त्री, पुत्र, धन पृथ्वी का भोग आदि भी आत्मा कहे जा सकते हैं। किन्तु इनकी नश्वरता के कारण विद्वानों को यह अर्थ अभीष्ट नहीं है।

भूतात्मा (इन्द्रियों के सहित शरीर), विज्ञानात्मा (अन्तःकरण के बुद्धि तत्व में स्थित आत्मतत्व, व्यावहारिक अहम्) तथा शुद्ध आत्मा (अविनाशी चेतन तत्व) इन तीन तरह के भेदों को जानने से आत्मा के विषय में गंभीर और सही चिन्तन हो सकता है।

आरंभ में प्रस्तुत दोनों वाक्यों में प्रथम-भूतात्मा तथा तत्सम्बन्धी सुख-समृद्धि के लिए सब कुछ त्याज्य बताना असंगत है। शुद्ध आत्मतत्व तो स्वयं प्रकाश, अविनाशी आदि लक्षणों से समझाया गया है। उसकी रक्षा के लिए प्रयास व्यर्थ है क्योंकि वह स्वयं स्वभावतः सदैव सुरक्षित है। अतः उसकी रक्षा के लिए दोनों वाक्यों को मानना असंगत है। इस तरह भूतात्मा या शुद्ध आत्मतत्व की रक्षा के लिए उपर्युक्त दोनों वाक्य नहीं हैं। शेष वचंता है विज्ञानात्मा। इसी को सुरक्षित रखने के लिए उपदेश सार्थक हैं। इसी को पवित्र रखने पर शुद्ध आत्मतत्व प्रगट होता है।

अन्तःकरण को सुरक्षित रखने के लिए मन, वाणी और कर्म पर संयम किया जाता है। मन की एकाग्रता तथा बुद्धि की निर्मलता ही अभीष्ट है। अतः पाखण्ड, लोभ, तथा भ्रष्टाचार से प्रेरित कार्य न किये जायें। इसके लिए स्वधर्म पालन में दृढ़ता ही सीधा मार्ग है। उच्च मानवीय आदर्शों के साथ, अहंकार रहित लोक सेवा जीवनमुक्ति का साधन हे। किसी के भौतिक विकास को तुच्छ समझते हुए, ईर्ष्या द्वेष के त्याग पूर्वक नश्वर पदार्थों का मोह छोड़कर, ज्ञान से आत्मरक्षा करना, यही अभीष्ट उपदेश है।

[6]
जीवन की साधना में सदाचार

लोक कल्याण या परोपकार जैसे उच्च मानवीय आदर्शों पर चलते हुए भी, निष्कलंक रहना निश्चित नहीं है। भक्त, योगी, सिद्ध आदि बनना या सार्वजनिक हित की संस्थाएँ–विद्यालय, अस्पताल आदि खोलने में भी, अपवित्र धन और मन होने पर यही पतन के हेतु बन जाते हैं। राजनीति के द्वारा लोक सेवा करना बहुत कठिन कार्य है।

इसमें पग-पग पर विचलन की संभावना रहती है। अतः हमारे यहाँ सदाचार को परम धर्म कहा गया है। इसके बिना सारी क्रियाएँ व्यर्थ या विपरीत फल देने वाली हो जाती है। इसीलिए मनुजी ने आगाह किया–आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।

तस्मादस्मिन् सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः।।

सदाचार का पालन नित्य और सदैव होना चाहिए। यह परमधर्म है। इसका स्वभाव बना लेना ही कल्याणकर है। जीवन के आरंभ में ही सदाचार की शिक्षा दृढ़ कर देना बालक का सही पोषण है। माता-पिता तथा शिक्षक, इस कार्य को करने में सचेष्ट हो जायं, ऐसी प्रेरणा देना समय की मांग है। यह सबसे बड़ा लोकोपकार है। दीर्घकाल में अच्छा फल देनेवाली इस योजना का फल चिरस्थाई होगा।

तात्कालिक फल के लिए जन-जागरण का कार्य हितकर है। लोग अपने अधिकार और कर्तव्य को जाने, राष्ट्र और देश के गौरव के समझे, स्वाभिमान, नैतिकता, सत्य, न्याय को आदर्श मानकर सामूहिक कार्यों में रुचि लेना आरंभ करें, इसकी प्रेरणा देने वाले स्वयं सेवकों की आवश्यकता है। समाज को निकट भविष्य में संभावित विभषिका से बचाने के लिए, उपर्युक्त दोनों तरह की शिक्षा और प्रेरणा देने वाले पैदा होना ही शुभ लक्षण है। इस तरह का व्यक्ति स्वत; दीपतुल्य है। दल बनाने से आवश्यकता पूर्ण हो सकती है। वह अनेक दीपों को जला सकता है तथा उसके आलोक में अनुगमन करके लोग सुखी रह सकते हैं। ऐसा लोकनायक बनना कौन नहीं चाहेगा।लोक-परलोक दोनों इसी से सिद्ध होगा।

[7]
राष्ट्रहित

कृष्वन्तो विश्वमार्यम् को आदर्श मानने वाली भारतीय संस्कृति और मेधा, इस समय अनार्यों का अनुकरण कर रही है। हास्यास्पद है कि, इस विपन्नावस्था में भी हम विश्वगुरु होने का स्वप्न देखते हैं। विदेशी संस्कृति से पोषित संविधान एवं तदनुसार बने कानून, अपनी संस्कृति को दीमक की तरह चाट रहे हैं। गर्भपात, समलैंगिक सम्बन्ध, लिव इन की मान्यता, एस सी, एस टी एक्ट, आरक्षण के नियम, अल्पसंख्यक सम्बन्धी नियम आदि सैकड़ों प्राविधान पूरे समाज को शीर्षासन पर खड़ा कर दिये हैं, सब को आर्यत्व (ब्राह्मणत्व) देने के बजाय अनार्यत्व (शूद्रत्व) में परिणत करके समता लाईजारही है। विदेशी लोग इस देश की सांस्कृतिक गरिमा को समझ रहे हैं तथा वे हमारे अतीत से प्रेरणा ले रहे हैं। हम अपने को भूल रहे हैं। सिनेमा जगत, खेलकूद, नाच गाना आदि पेशे के लोग, अवसरवादी नेता, भ्रष्टाचार से प्राप्त सम्पन्नता वाले अधिकांश लोग सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ रहे हैं। वे पांच प्रतिशत लोग हमारे समाज के आदर्श नहीं है। कानून के द्वारा तथा सामाजिक चेतना के द्वारा राष्ट्रहित को देखना चाहिए।

[8]

देशहित

भारत का विभाजन साम्प्रदायिक आधार पर हुआ था। पाकिस्तान उन मुसलमानों के लिए बना जो भारतीय होकर नहीं रहना चाहते थे।वे मोहम्मद गोरी, बाबर आदि आक्रान्ताओं के वंशज थे। उनको परास्त करके स्वशासन लेना सन्निकट था। पेशवा बाजीराव और मराठियों ने मुगलों को परास्त करके दिखाया। दिल्ली की सत्ता स्वदेशी होने वाली थी, तब तक अंग्रेजों ने विघ्नं डाल दिया। फूटडालकर अंग्रेजों ने लाभ उठाया।हिन्दू तो गुलाम थे ही, मुसलमान भी गुलाम हो गये। इस गुलामी के विरुद्ध हिन्दू तथा मुसलमान दोनों लड़े थे। दोनों का उद्देश्य एक होंने पर भी आन्तरिक भेद था। स्वतंत्रता मिलते समय भेद सामने आ गया। फलतः भारतीय रक्त से पोषित मुसलमान तथा हिन्दू इस देश में रह गये। जिन्हें भारतीय संस्कृति से विरोध था वे पाकिस्तान बनाकर अलग हो गये। हिन्दुओं के साथ सामंजस्य बना कर रहने वाले मुसलमान, अब भी इस देश में सुखी हैं। वे भारतीय हैं। किसी देश का भी डी. एन. ए. होता है। बाहर से आने वालों की पहचान हो जाती है।इसी भेद के कारण कुछ मुसलमान पाकिस्तान बना डाले। ऐसा होने के बाद दोनों देश अपनी-अपनी समृद्धि में शक्ति लगा सकते थे। किन्तु पाकिस्तान में सद्बुद्धि नहीं आई।स्वतंत्रता के बाद भारतीय मुसलमानों को प्रलोभन, विदेशी सहायता, तथा गलत सन्देश देकर पाकिस्तान ने बहकाना आरंभ कर दिया। यहाँ के मुसलमानों में से कुछ प्रलोभन और बहकावे में आ रहे हैं। भारतीय राजनीतिज्ञों की अदूरदर्शिता ने भी इस बहकावे को प्रबल बना दिया। फलतः यहाँ के मुसलमान भी असहयोग, आतंक और देश द्रोह तक करने पर आ गये।

इस परिस्थिति से देश को बचाने के लिए, सांस्कृतिक जागरण, देश-प्रेम, स्वाभिमान, स्वदेशी की भावना आदि को बढाना पड़ेगा। सेकुलर शासन व्यवस्था तो ठीक है किन्तु इससे भारतीय संस्कृति पर आघात नहीं होना चाहिए। सम्प्रदायों के विषय में सेकुलरिज्म ठीक है, संस्कृति तो भारतीय रहेगी। ऐसा प्रबन्ध सभी देश अपने हित में करते हैं। भाषा, परम्परा, नैतिक आदर्श आदि राष्ट्र की पहचान है। सेकुलरिज्म का प्रभाव इन पर स्वीकार्य कहीं नहीं है।

अपनी पहचान बनाये रखने के लिए सांस्कृतिक क्रान्ति आवश्यक है। भारतीय संस्कृति को यहाँ पर न मानने वालों की भावनात्मक कमी पैदा की गयी है।यह देश असुरक्षित किसी के लिए नहीं है। भ्रम पैदा किया जाता है अन्यथा यहाँ की संस्कृति उनके रक्त और स्वभाव में अब भी है।

यह बातें कोई अतिवाद नहीं है। विश्व के समस्त सम्पन्न राष्ट्र अपनी संस्कृति से चिपके हुए हैं। इस आधार को छोड़ देने पर देश-प्रेम की भावना समाप्त हो जाती है। भारतीय मुसलमान भी अपने पूर्वजों के मूल आधार पर आरुढ़ हो जायं तो इस देश से प्रेम बना रहेगा। बहकने वाले बालकों को तथा पथभ्रष्ट नेताओं को प्रबुद्ध मुसलमान ही

समझा सकते हैं। ऐसे प्रबुद्ध लोगों से भी संस्कृतिक क्रान्ति में सहयोग मिल सकता है। आवश्यकता यह है कि समाज और शासन सबका विश्वास प्राप्त करे। ईमानदारी से सोचने, समझने तथा दृढ़तापूर्वक पालन कराने पर, योजना सफल होगी।

इस देश में बौद्ध-जैन, सिख तथा छोटे-छोटे कई सम्प्रदाय हैं। यह सभी भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित हैं। मूल धारा, तथा देश से किसी का विरोध नहीं है। इसका कारण है कि इत सबका रक्त स्वदेशी है। सब में भारतीयता का आदर है। यही बात यहाँ के मुसलमानों के लिए भी लागू होनी चाहिए–और अधिकांशतः ऐसा है भी। बाह्य प्रभाव और वोट की राजनीति से प्रेरित होने वाले कुछ लोग हैं, जिन्हें ठीक शिक्षा देने पर समस्या का समाधान संभव है। संविधान में भी तदनुसार संशोधन हो। देश-प्रेम को अन्तःकरण में दृढ़ करने के लिए, अपनी सांस्कृतिक धरोहर से समझौता कदापि न किया जाय। ऐसा संवैधानिक प्राविधान होना चाहिए। संविधान ही राजनैतिक भ्रष्टाचार को समाप्त कर सकता है। तभी देश-प्रेम में स्थायित्व आएगा। संस्कृति देश से सम्बद्ध होती है, अतः संस्कृति से प्रेम होने पर देश-प्रेम रहेगा।

[9]
जातिप्रथा एवं जातिवाद

जातिप्रथा और जातिवाद में बड़ा अन्तर है। इसे न समझने के कारण लोग स्मृतियों, भारतीय परम्पराओं तथा संस्कृति की निन्दा करते हैं। जाति व्यवस्था का दुरुपयोग होने लगा और इससे अव्यवस्था फैलने लगी तो इस प्रथा का सामाजिक परिवर्तन के द्वारा संशोधन हो सकता था। यह स्वाभाविक क्रिया समाज में होती रहती है किन्तु राजनैतिक हस्तक्षेप तथा भेद डालकर के शसन करने की नीति के कारण जाति प्रथा ही जातिवाद में परिणत हो गयी है। यह समाज तथा देश के लिए अहितकर है।सम्प्रदायवाद भी इसी कारण से उत्पन्न हुआ है। इनको राजनीति से मुक्त रखना लाभकर था किन्तु स्वार्थसिद्धि के लिए सत्ता के लोभियों ने जातिवाद और सम्प्रदायवाद के विषवृक्ष पैदा कर दिया है।शासन के स्तर पर जाति और सम्प्रदाय के आधार पर कानून नहीं होने चाहिए। वर्तमान संविधान में जाति और सम्प्रदाय के आधार पर आरक्षण एवं संरक्षण के कारण जातिवाद और सम्प्रदायवाद दृढ़ हो गये है। सामाजिक चिंतन और कार्य में संविधान का हस्तक्षेप समाप्त करने से ही इन समस्याओं से मुक्ति मिलेगी।

इस देश की संस्कृति एक ही रही है, किन्तु राजा अनेक जातियों के हुए हैं। वे राजा और राजपूत माने जाते थे। पाल, चोल, मल्ल, गूजर आदि जातियों का शासन यहाँ रहा है। यह जाति के आधार पर शासन नहीं चलाते थे, अतः सभी इन्हें राजा मानते थे। प्रजा के शोषण की समस्या जमींदारी प्रथा में बढ़ी है। शोषित लोग बुद्धि और धन दोनों में कमजोर होते थे। जाति के आधार पर नहीं, स्वाभिमान के अभाव व गरीबी में शोषण होता था। अपने ही जाति के लोगों का भी शोषण लोग करते रहे हैं। आज भी जातिवाद के नाम पर, उसी जाति के नेता, अपनी समृद्धि तथा पद-प्रतिष्ठा बढ़ाते हुए जाति के लोगों को ही बेवकूफ बना रहे हैं। आरक्षण का लाभ सम्पन्न लोग ही पा रहे हैं। यह

शोषण अब भी हो रहा है। सामाजिक और साम्प्रदायिक विद्वेष इन्हीं लोगों के कारण है।अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि सवर्णों ने ही दलितों का शोषण किया है। शोषण अवश्य हुआ हैऔर हो रहा है जिसके लिए शासन प्रणाली जिम्मेदार है, जाति प्रथा नहीं जातिवाद कारण है।

जाति के आधार पर सामाजिक समरसता, बिगाड़ना उचित नहीं है। संविधान एवं कानूनों में इस तरह के संशोधन आवश्यक हैं। स्वार्थी राजनीति के हस्तक्षेप को रोकने के बाद प्रबुद्ध लोग ही सामाजिक समरसता स्थापित कर सकते हैं। जातिप्रथा में उत्पन्न विकारों को भी सामाजिक चिंतक ही ठीक कर सकते हैं।

[10]

एक तत्व

इस सृष्टिमें देश, काल परिस्थिति की भिन्नता के कारण, सर्वत्र अनेकता और नानात्व का ही भाव होता है। इस अनेकता में भी ऋषियों ने, सब में अनुस्यूत, एकतत्व को देखा है। श्रद्धा में भेद होने पर यही तत्व अनेक रूपों में आभासित होता है। नामरूप में भेद होते हैं किन्तु फल की दृष्टि से एकता बन जाती है।परम लक्ष्य वह चेतनतत्व, सब के लिए एक हे। 'तत्त्वमसि' की सिद्धि शास्त्रों में उपलब्ध है।इसे समझने के लिए शास्त्रों में दो भिन्न-भिन्न मार्ग बताया है।कार्यएक ही है किन्तु मार्ग का भेद योग्यतानुसार है। वेद ने ही कर्ममार्ग और ज्ञान मार्ग के नाम से दो तरह की साधना पद्धति बताया है। कर्म मार्ग संसृति का अवश्य है किन्तु इसकी भी परिणति ज्ञान मार्ग में हो जाती है। अन्त में एक तत्व ही बचता है। इस मान्यता की स्थापना नीचे दिये गये विवरण से स्पष्टहै।

छान्दोग्य उपनिषद् में है–सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तद्धैक आहुरसदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् तस्मादसतः सज्जायते (6.2.1) इस तरह से दो विपरीत विचार उपस्थित हैं एक में सत् पहले है, दूसरे में असद् पहले है।

इसका निर्णय करने के लिए दूसरा मंत्र है। 'कुतस्तु खलु सौम्यैवं स्यादितिहोवाच। कथमसत–सज्जायेतेति ।(6.2.2)।। इस तरह सत् और असत् की प्राथमिकता का प्रश्न उठाकर, श्रुति ने स्वयं सत् की प्रतिष्ठा की है।

इस विषय के उदाहरण अन्यत्र भी मिलते हैं। सदसच्चाह अर्जुन कहकर गीता में सत् में ही असत् को समाहित किया है। कवि जयशंकर प्रसाद ने 'एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन' कहकर जड़-चेतन में एकता देखा। इस एकत्व का भान चैतन्य से ही होता है। जड़ का प्रकाशक भी चैतन्य ही है। अतः जड़ चेतन प्रकृति-पुरुष, माया-ब्रह्म, सद्सद् सभी में एक तत्व का दर्शन हो सकता है। वही तत्व द्रष्टा के रूप में होकर दोनों को प्रगट करना है। द्रष्टा (चैतन्य) ही एकतत्व के रूप में प्रमाणित होता है। अंधकार में प्रकाश का विलय नहीं होता है। प्रकाश होते ही अंधकार का विलय उसी में हो जाता है। अतः सत् ही प्रतिष्ठित है। गीता में, 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः– कहकर सत् को भावरूप बताया है। अभाव से भाव होना सर्वथा अतर्क्य है।

अभाव में क्रिया हो सकती है। किन्तु उसके द्वारा क्रिया नहीं होती है।प्रकृति-पुरुष के सम्बन्ध से भी यही स्पष्ट है।

असदाग्रह कर्म मार्ग द्वैत, संसार का प्रतिपादक है।सदाग्रह, अकर्म मार्ग(निर्वाण) का प्रेरक है। दोनों का समन्वय करते हुए 'सदसच्चाहमर्जु'' कह कर गीता में समन्वयात्मक कर्मयोग का सिद्धान्त प्रतिपादित है। इससे चित्त शुद्धि द्वारा ज्ञान मार्ग में प्रवेश का द्वार मिलता है। इससे विपरीत चलने पर, पहले ज्ञानोपासना और बाद में कर्म (योग, भक्ति आदि) को मानना उपर्युक्त सिद्धान्त से असिद्ध है। सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते–कह कर एकतत्व का गीता में निर्णयात्मक सन्देश दिया है।

[11]
संत की जाति

एक आख्यायिका के अनुसार–प्रजापति के उपदेश 'द' अक्षर से देवता, मनुष्य एवं दानवों ने क्रमशः दम, दान, दया की शिक्षा लिया था। यही उपदेश का सही उपयोग है। आज संत रविदास की जयन्ती पर विभिन्न लोग अनेक प्रकार के कार्यसिद्ध कर रहे हैं।संत से सही प्रेरणा यह हो सकती है कि सवर्ण लोग भी योग्य दलित का भी सम्मान करें। दलित लोग संत की तरह सहिष्णु एवं योग्यता होने पर भी निराभिमानी रहे। शासन संत के विषय में हस्तक्षेप न करके, राजनीति द्वारा उसका चरित्र दूषित एवं शंकास्पद न बनाए।

सबको सम्मान देना, सहिष्णुता रखना, अनावश्यक हस्तक्षेप न करना, यह लाभकर शिक्षाएँ होंगी। सत चरित से वही लिए जाएं।

''स्वकर्मणा तमभ्वर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः' गीता के इस कथन को आचरण से प्रमाणित करके संत रविदास ने स्वधर्म की प्रतिष्ठा किया हे। यह संत के जीवन से विशेष शिक्षा है।

[12]
सांस्कृतिक अखण्डता

अखण्ड भारत के विषय में चिन्तन करने पर स्पष्ट होता है कि छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त देश राजनैतिक दृष्टि से अखण्ड होना संभव नहीं था। एक ही काल में अनेक राजाओं का होना इतिहास, पुराण से प्रमाणित है। अतः अखण्डता का आधार शासन नहीं धर्म एवं संस्कृति को मानना तर्कसंगत है। पुराने समय में धर्मका ही शासन था। राजा चाहे जिस जाति का हो, वह स्मृतियों से स्थापित धर्म को ही प्रवर्तित करता था।

यह अखण्डता धर्म और संस्कृति के क्षरण से समाप्त हुई है। ब्राह्मण धर्म के नाम से जाने गये सनातन धर्म में, वर्णव्यवस्था के आधार पर धर्म के चारों चरण सुदृढ़ थे। सनातन धर्म में बौद्ध धर्म की समन्वयवादिता और अहिंसा की शिक्षा तथा वाद में भक्ति मार्ग की व्यक्तिगत साधनाओं से प्रभाव से सामाजिक एवं सांस्कृतिक सिद्धान्तों को सुरक्षित रखने की सामर्थ्य कम हो गयी। यहाँ की जुझारू आर्य-संस्कृति कुंठित हो गयी।

मुसलमान और ईसाई दोनों ने यहाँ के समाज की कमजोरी का लाभ उठाया। मुसलमानों ने भय से तथा ईसाई ने लोभ से यहाँ के समाज को वश में करके शासन ही नहीं किया बल्कि अपना धर्म भी प्रवर्तित कर दिया।

यदि अखण्डता की कल्पना पुनः आती है तो सांस्कृति का पुनरुद्धार करना होगा। केवल राज्य का नहीं संस्कृति का प्रसार भी हो।

[13]

जीवन की नीति

- मनुष्य इस संसार में अपने प्रारब्ध को लेकर आता है।
- यहाँ से जाते समय अच्छा या बुरा कुछ न कुछ लेकर ही जाता है।
- पाप-पुण्य तथा अच्छे या बुरे भावों को लेकर जाता है।
- धन-सम्पत्ति, अपना अनुभव (कृति, काव्य) तथा यश-अपयश, कीर्ति-अपकीर्ति को छोड़कर जाता है।
- सदाचार और पुरुषार्थ के द्वारा लेकर जाने की सामग्री तथा छोड़ने वाली सामग्री दोनों प्रशंसनीय हो जाती है।

[14]

सूक्तियाँ

1. आत्म वित्तं त्रिधा कुर्याद्धर्म वृद्धयात्म भोगतः (शिव पुराण)।
2. कर्मणा जायते भक्ति र्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते। ज्ञानात् प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः।। (शिव पुराण)

[15]

वास्तविक विकास

प्राकृत, विकृत, संस्कृत तीन शब्दों से प्रकृति की विभिन्न दशाओं का बोध होता है। जो सहज स्वाभाविकी स्थिति है वह प्राकृत है। परिवर्तन, विकास आदि नामों से जाने गये विकार समाप्त हो जाते हैं तथा समय पर पुनः प्राकृत रूप प्रकट होता है। प्रकृति की उपयोगिता बढ़ाना, उसका संस्कार करना है तथा उपयोगिता घटना, उसको विकृत करना है। संस्कार के नाम पर ही विकार भी मनुष्य ही करता है। मनुष्य में ही क्षमता है जो प्रकृति के साथ छेड़खानी कर सके। विकृति का अतिशय प्रकृति का मूलरूप में परिणित होना है। विकास की आँधी (अंधा विकास) बहुत ही तीव्र गति से चलती है। आज संस्कृति के लोप के साथ विकास की कल्पना तथा प्रयास हमें प्राकृत स्वरूप में पहुँचा देगा। अतः संस्कृति को बनाना भी सीखें।

[16]
कर्तव्य बोध

कर्तव्य बोध ही मनुष्य को महान बनाता है। कर्तव्य को करना तथा अकर्तव्य को न करना, यही तो धर्म है। कर्तव्य बोध होने पर अधिकार प्राप्त करने की शक्ति मिलती है। अधिकार नहीं, कर्तव्य के लिए कृत संकल्प होना ही मूल मंत्र है। संकल्प होने पर अधिकार बलात प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि सत्य में अपार शक्ति है।

[17]
कर्मफल

जीवन में जो भोग या कर्म का परिणाम (फल) मिल रहा है, उसे बिना तर्क किए स्वीकार करने की आदत पड़ जाय तो जीवन सुखद हो जाय। कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित न होने के कारण मनुष्य व्यग्र और असन्तुष्ट होता है, किन्तु यह सम्बन्ध तर्कों से जान पाना सदैव संभव नहीं है। अतः ईश्वर प्रकृति रूपी कम्प्यूटर (चित् शक्ति से संचालित) के माध्यम से जो फल प्रदान करता है उसे मानना ही बुद्धिमानी है। ईश्वरीय न्याय में अनेक कर्मों का फल, अनेक वादों का निस्तारण एक बार में भी किया जाता है। इसीलिए मनुष्य की अल्पज्ञ बुद्धि उसे नहीं समझ पाती है। निष्कर्षतः जो भी कर्मफल मिल रहा है उसे स्वीकार करना अपने कर्मों का ही फल (अपनी सन्तान) समझ कर उसमें सादर प्रसन्न रहना सीखें। हमारा कर्म ठीक है या नहीं यह तर्क का विषय है। इसके निर्धारण के लिए चार उपाय हैं–शास्त्र, अन्तःकरण (जिसकी भावना से कार्य किया जाता है), लोक (समाज) तथा प्रत्यक्ष एवं दूरगामी परिणाम।।

[18]
बुद्धिमानी

सार्वजनिक समस्याओं, घटनाओं, तीव्र परिवर्तन, मूल्यों की शीर्षासन पर स्थापना आदि तथा बड़े-बड़े लोगों द्वारा असत्य एवं पाखण्ड का अबाध आचरण जैसी समस्याओं को सार्वजनिक आचरण का परिणाम समझकर उससे भी अभितप्त न होना बुद्धिमानी है। अशोच्यानन्व शोचस्त्वं'' गीता के इस वाक्य के अनुसार जो हमारे शोक करने से प्रभावित नहीं होने वाला है, उसकी चिन्ता न करें। युग धर्म को जानते हुए जहाँ तक हो सार्वभौम धर्म का पालन करते रहना चाहिए। सफलता की प्राप्ति के लिए अधर्म (बुरा कार्य) न करे। जीवन का अगला पड़ाव सुरक्षित रखें।

[19]
अवतार और विभूति

संस्कृत वाङ्मय के मूल स्रोतों में ईश्वर के अवतार की बात कही नहीं मिलती है। वैदिक साहित्य के अलावा रामायण, महाभारत आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी अवतार की पुष्टि नहीं होती है। पुराणों में ही अवतार की बात लिखी हुई मिलती है। पुराणों की रचना

नहीं हुई है बल्कि लोक प्रचलित आख्यानों का संग्रह किया गया है। लोक में तत्व विवेचन नहीं बल्कि व्यावहारिक और धरातलीय बातों की स्थापना से काम चलाया जाता है। अतः केवल पुराणों के आधार पर अवतारवाद को प्रतिष्ठित मानना तर्क संगत नहीं है।

गीता में ''सम्भवाम्यात्म मायया' ''तदात्मानं सृजाम्यहम' आदि अनेक स्थलों के आधार पर अवतार को बात सिद्ध करने का प्रयास होता है। किन्तु इन सब स्थानों पर अवतार की जगह ईश्वर की विभूति अर्थ लेना ही संभव है। ईश्वर के विभूति के रूप में कृष्ण ने स्वयं अपने को कहा है–

गीता के दशम् अध्याय में विभूतियों की गणना करते समय कहा है–''वृष्णीनां वासुदेवाऽहं पाण्डवानां धनंजयः' कृष्ण और अर्जुन दोनों को वेदव्यास ने ईश्वर की विभूति कहा है। अवतार और विभूति मानने के बारे में विचार करते समय सामाजिक लाभ-हानि पर विचार करने से सार्थक चिन्तन होगा। अवतार की कल्पना के कारण ही आजकल सैकड़ों स्वयंभू अवतार प्रतिष्ठित होते जा रहे हैं। इससे श्रद्धा के कारण दोष देखने की दृष्टि ही लुप्त हो जाती है।विभूति मानने पर 'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि' यानी अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति के सदाचार का ही अनुकरण करनरे की बात मान्य है। अन्धानुकरण छोड़कर बच सकते हैं।

राम को अवतार मानने पर केवल भक्तों को उनके नाम पर सिद्धि मिल सकती हैं। अन्य लोगों को उनके मानवीय आदर्श मानने न मानने का विकल्प उपस्थित हो जाता है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम, ईश्वरीय विभूति मानने पर उनके व्यक्तित्व की महिमा सभी स्वीकार करेंगे। ये समाज के लिए आदर्श स्थापित करने वाले तथा सब के लिए उपकारक चरित्र के व्यक्ति सिद्ध होते हैं।

इस तरह राम के व्यक्तित्व को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में मानना उनका उच्चतम आकलन तथा आदर है। सामाजिक विवाद के समापन तथा महापुरुषों के जीवन को प्रेरणा स्रोत बनाने तथा उन्हें प्रकट करने वाले ईश्वर के अनन्त शक्ति का ज्ञान विभूति मानने पर ही संभव है। वैसे किसी की श्रद्धा को विचलित करना उचित नहीं है क्योंकि सत्य तो यही हैकि व्यक्ति के लिए,

तं यथायथोपासते तथैव भवति।''

अर्थात् ये यथा मां प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम ।'' मान्य है।

उपासक की श्रद्धा के अनुरूप ही ईश्वर होता है। सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से उपर्युक्त विवेचन किया गया है।

[20]
तप और धर्म

धर्म मार्ग पर स्थित रहने पर तपस्या करने का अधिकार होता है। इससे सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं। धर्म का आधार न होने पर तप अहित भी कर सकता है जैसे असुरों की तपस्या।

प्राणायामः महातपः। प्राणायाम प्राणों का तप है। वाणी, कर्म, मन से सात्विक, राजस, तामस तीन तरह के तप गीता में बताये गये हैं। सात्विकता होने पर, धर्मसम्मत तपस्या वरणीय है।

आजकल तपस्या और साधना से क्षुद्र सिद्धि पाकर बहुत से स्वयंभू भगवान समाज को भ्रष्ट करके स्वयं दुर्गति भोग रहे हैं। शूद्र को वेदाध्ययन या तप इसीलिए वर्जित था। जाति से हीन होने पर भी सन्त रैदास ब्राह्मण हो गये। सात्विक तप (ईश्वर प्राणिधान) से उन्होंने अदभुत शक्ति प्राप्त किया, जिससे लोक कल्याण भी हुआ। उन्हें दलितों के लिए सन्त मानकर, छोटा न किया जाय। यह तो एक उदाहरण है। पक्ष-विपक्ष में अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे। तप और धर्म में अन्तर जानना चाहिए। धर्म सबके लिए होता है किन्तु तप के लिए योग्यता आवश्यक है। दोनों में अनेक अन्तर गिनाये जा सकते हैं। तप दो धारी तलवार है जिसे धर्म के कवच में रखा जा सकता है। भावना प्रधान है–

तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः।
स्वाभाविकी वेदविधिर्न कल्कः।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कः।
तान्येव भावोपहतानि कल्क;।।

[21]
वेद परिचय

वेद ज्ञानराशि है। इसके संहिता भाग के ज्ञान का ही विनियोग (प्रयोग, उपयोग) ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद भागों में भी होता है। संहिता भाग ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्राह्मण भाग गृहस्थ आश्रम में आरण्यक भाग वानप्रस्थ आश्रम, उपनिषद संन्यास आश्रम में विनियुक्त होते हैं। ब्राह्मण भाग कर्मकाण्ड है, आरण्यक उपासना काण्ड है तथा उपनिशद ज्ञान काण्ड है। इस तरह चार आश्रमों में वेद के चार रूप उपास्य हैं। आजन्म ब्रह्मचर्य रहने वाले के लिए संहिता का पाठ ही परम कर्तव्य है। क्रमशः आश्रमों में जाने वाले के लिए चारों भाग उपादेय है। उपासना के प्रेमी (वैराग्य में पूर्णनिष्ठा न होने पर) आरण्यक तक सीमित रहते हैं। वैराग्य सम्पन्न होने पर उपनिषद भाग की सिद्धि होती है। वैसे पढ़ने पढ़ाने की बात भिन्न है किन्तु वास्तविक फल पाने के लिए तदनुसार योग्यता आवश्यक है। ब्रह्मचर्य में प्राप्तव्य संस्कार तो सबके मूल में है। इस जन्म या पूर्वजन्म में ही इसकी सिद्धि करनी पड़ती है।

[22]
देशप्रेम

किसी देश की नागरिकता से जो अधिकार मिलता है, उसके साथ देश-प्रेम का कर्तव्य भी अनिवार्य होता है, जिसके न होने पर नागरिकता समाप्त हो सकती है या देश-द्रोही मानकर दण्ड दिया जा सकता है। देश-प्रेम मे सक्रिय भूमिका न होने पर भी नागरिक माना जासकता है किन्तु देश प्रेम का लक्षण न होना अवैधानिक है। विरोधी देश

का समर्थन करना या उससे अपने देश की पराजय होने पर जश्न मनाना देश-द्रोह की श्रेणी में रखना चाहिए। मन वाणी और कर्म तीनों से देश प्रेम का आकलन होता है।

भारत और पाकिस्तान सम्प्रदाय के आधार पर दो भागों में बंटे हैं। जो लोग अपने सम्प्रदाय के अनुसार देश में नहीं जा सके उन्हें अपने देश प्रेम करनाही चाहिए। भारतीय मुसलमान या पाकिस्तानी हिन्दू दोनों के लिए यह लागू होता है। ऐसा न करने वाले दण्डनीय हैं।

जिस देश में रहना है वहाँ की मूल बहुजन की संस्कृति की समरसता सभी के लिए आवश्यक है। ऐसा न होनेपर सामाजिक कण्टक पैदा होता है। सामाजिक या राजनैतिक दोनों तरह के कण्टकों का शोधन करना पड़ता है। सभी सम्प्रदायों के लिए समान आचार संहिता होनी चाहिए। जाति-धर्म के नाम पर विशेष सुविधा देकर वोट बैंक बनाने की प्रथा भी देशद्रोह है। पार्टी और पद के लिए राजनेता भी देश के शत्रु हो जाते हैं। आरक्षण और अल्पसंख्यकों के नाम पर भेदभाव तत्काल समाप्त करने योग्य है। सब की सुरक्षा तथा सब को समान अवसर देना ही शासन की सफलता है। भेदभाव और झूठा प्रदर्शन भ्रष्टाचार को बढ़ाता है। इस तरह का भ्रष्टाचार रोकना सबसे बड़ा देश प्रेम है।

सांसद विधायक से लेकर ग्राम प्रधान तक में अधिकांश राजकीय कोष के शोषण और उसके दुरुपयोग में लिप्त रहते हैं। सांसद निधि आदि का उपयोग बीस प्रतिशत से कम ही वास्तविक काम में होता है। चालीस प्रतिशत लेकर यह धन आबंटित होता है। शेष में चालीस प्रतिशत लेने वाला अपना निजी धन बना लेता है। बीस प्रतिशत से खाना पूरी की जाती है। कभी-कभी केवल कागज पर कार्य हो जाता है। यह परम्परा अधिकांश माननीयों की है जिसके साक्ष्य इकट्ठा करना कठिन है। समाज में लोग खूब जानते हुए मौन दर्शक बने रहते हैं। माननीयों को वेतन, भत्ता, निधि देकर पांच वर्ष में करोड़ों का मालिक बना दिया जा रहा है। राजनीति एक व्यवसाय से अच्छी कमाई का साधन है। पेंशन की व्यवस्था हो जाने पर अंधेर हो गयी है। माननीय लोग नौकरी में पैंतीस वर्ष बिताने वाले अधिकारी की सुविधा भी प्राप्त करने लगे हैं। नौकरी में पेंशन बन्द करके माननीयों को देने की व्यवस्था राजकीय धन की लूट है। देश प्रेम का दंश जाग्रत हो तो माननीयों का भ्रष्टाचार रोका जाय। यह सही हो जाय तो भ्रष्टाचार का उन्मूलन हो जाय। स्वतंत्रता के बाद से इस तरह लूट और भ्रष्टचार हो रहा है जिससे राजनेता ही व्यवसायी नौकरशाह तथा बाहुबली सभी रूप में भ्रष्टाचार कर रहे हैं।

जन-प्रतिनिधि विधायिका का अंग, होता है। अपने क्षेत्र की समस्याओं के निराकरण हेतु यह सम्बन्धित मंत्री से कह सकता है। धन के वितरण और नियंत्रण का काम विधायक, सांसद के पास होना कार्यपालिका के काम में विधायिका का हस्तक्षेप है। भ्रष्टाचार के लिए संविधान के विरुद्ध यह कार्य हो रहा है। देश के रक्षकों को देश-प्रेम के लिए संविधान का आदर करना चाहिए।

जनप्रतिनिधि और मंत्री ईमानदार रहें तो राजकीय कर्मचारी बहुत कम भ्रष्टाचार कर पाएगा। कर्मचारी के ऊपर अनेक तरह के नियंत्रण होते हैं। उसका भ्रष्टाचार उसी तरह

का होगा जैसे नदी में रहने वाली मछली का पानी पी लेना। इससे नदी के जल स्तर पर प्रभाव नहीं पड़ता है। मंत्री और नेता मिलकर राजकीय कर्मचारी से योजनाबद्ध भ्रष्टाचार कराते हैं। उस समय नहर निकालकर नदी का पानी बाहर भेजने जैसी स्थिति होती है। जिससे राजकीय कोष पर बहुत प्रभाव पड़ता है। भ्रष्टाचार की जांच होने पर राजकीय कर्मचारी दोषी और बदनाम होता है। राजनेता शायद ही फंसता है। लोभ और मजबूरी में कर्मचारी भ्रष्टाचार करता है जबकि अधिकारपूर्वक नेता भ्रष्टाचार कराता है। राजनैतिक कर्मचारी का भ्रष्टाचार घूस लेना है जिससे जनता को हानि होती है।राजकोष पर उसका प्रभाव कम पड़ता है। अपनी गंदगी को एक कर्मचारी पर फेंबकर राजनेता सफेद पोश बना रहता है। दलालों का सहारा छोड़कर अपने चरित्र के बल पर चुनाव लड़ें। राजनेता में देश-प्रेम जाग्रत हो जाय तो दोनों तरह का भ्रष्टाचार समाप्त हो सकता है।

इस देश में ईमानदारी से रहना उसी के लिए संभव है जो निर्धन और अनपढ़ है।वह भ्रष्टाचार करने का अवसर ही नहीं बना पाता है। काम चोरी ही उसका भ्रष्टाचार है। अधिकांश लोग मजबूरी में या जानबूझकर भ्रष्टाचार कर रहे हैं। पवित्र धन कमाने का रास्ता बहुत संकीर्ण हो चला है। आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं। अपवित्र धन से ही लोग बृद्धि प्राप्त करे हैं। अर्थ की आवित्रता से समाज दूषित है। अर्थे शुचिः स शुचिः– अर्थकी पवित्रता ही पवित्रता है। अपवित्र धन होने पर भ्रष्टाचार, आतंक, अनीति आदि का प्रवेश स्वाभाविक है। ऊपर से चलकर नीचे की ओर शुद्धीकरण की प्रक्रिया सफल होगी। पार्टी और पद तथा जाति और धर्म सबका ध्यान न देकर केवल देश-प्रेम पर ध्यान देने से सत्य और न्याय की प्रतिष्ठा होगी। ईश्वर से निडर, समाज सेवा में नैतिकता को हास्यास्पद मूल्य मानने वाले राजनेताओं को देश-प्रम के नाते ही सुधारना अति आवश्यक है। देश के कारण ही उनका भी अस्तित्व है अतः देश-प्रेम करना बुद्धिमानी है। राजदण्ड के जाग्रत रहने पर तत्काल सुधार होगा।

[23]
ब्राह्मणत्व और उसकी रक्षा

कभी-कभी ब्राह्मण की एकता के लिए सन्देश पढ़ता हूँ। मुझे लगता है कि ब्राह्मणत्व की रक्षा अधिक आवश्यक है। इसी से सारा समाज व्यवस्थित होगा। ब्राह्मणत्व क्या है यह जानने की जिज्ञासा होनी चाहिए।

तप, ज्ञान, त्याग और विश्व-कल्याण की भावना, मेरी समझ में ब्राह्मणत्व के लक्षण हैं। इनके साथ काम,लोभ, भय के कारण न्याय और सत्य को न छोड़ना, काम और अर्थ के विषय में सन्तोष जैसे सद्‌गुणों का धनी तथा तप, ज्ञान, त्याग, लोक कल्याण का स्वभाव आदि ब्राह्मणत्व के लक्षण हैं।

सात्विकता ही ब्राह्मणत्व है। जन्मना सभी शूद्र है। ऐसा भी कहा जाता है किन्तु यह मान्यता नहीं है। प्रथम वाक्य से सहमति ठीक है।

''जन्मना जायते शूद्रः संस्कारेण द्विजोच्यते। विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय कथ्यते।'' ब्राह्मण कुल में पैदा होकर भी यदि आचारहीन है, ब्राह्मणत्व नहीं निभाता तो

वह ब्राह्मण नहीं है। यह वैसे ही है जैसे वकील की सन्तान बिना वकालत किए वकील नहीं कहा जा सकता। विशेष उद्देश्य से ऊपर का श्लोक लिखा गया है। संस्कार और स्वाध्याय के महत्व को बताने के लिए यह जोड़ा गया है। पराशर, शुकदेव, अभिमन्यु आदि के उदाहरण से बीज का महत्व स्पष्ट है। राम, कृष्ण, ईसा, आदि जन्म से विशिष्ट थे। कम या अधिक बीज का प्रभाव सर्वत्र रहता है। ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्याँ अधिजायते। ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये। यह कहकर मनु भगवान ने सही बात को प्रमाणित किया है। यह अवश्य है कि जातिमात्र से ब्राह्मण निन्दनीय है किन्तु ब्राह्मणत्व का बीज शुद्ध जाति में रहता ही है।

ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए सर्वप्रथम परिवार की उपादेयता है। माता-पिता संस्कार देकर तथा पत्नी सहयोग देकर इस कार्य में मदद करते हैं। सन्तोष और सदाचार के दृढ़ होने पर स्वाध्याय आदि स्वधर्म का पालन कुल परम्परा के अनुसार स्वाभाविक हो जायेगा। ऐसा ब्राह्मण सबका मित्र होता है। कुल परम्परा को शंकरत्व से बचाना ब्राह्मणत्व की रक्षा है। इसका उपाय सोचना है।

कुल परम्परा को वर्ण संकरत्व से सुरक्षित रखने के लिए जाति और जीविका दोनों पर ध्यान देना होगा। संकरत्व तीन तरह से होता है। रोटी, बेटी और रोजी को अपने स्तर और स्वभाव के अनुसार रखने पर स्वधर्म का पालन होगा तथा संकरत्व का भय नहीं रहेगा। ऐसा करने में सामाजिक व्यवस्था कैसे अनुकूल रहे, इस पर विचार अभीष्ट है।

वर्ण संकरत्व से बचने के लिए ब्राह्मणत्व की ही सहायता लेनी होगी। सत्य के सरल मार्ग पर दृढ़ रहकर सबको उचित आदर देना, प्रदर्शन व सम्मान की उपेक्षा करना, ईर्ष्या-द्वेष का त्याग, सबका हितैषी बनना आदि ऐसे गुण हैं जिनके होने पर सभी मित्र हो सकते हैं। इससे ब्राह्मणत्व के प्रति आदर-भाव पैदा होगा। पवित्र जीवन जीने में बाधा नहीं होगी।

ब्राह्मणत्व के प्रतिष्ठित होने पर वर्णव्यवस्था प्रतिष्ठित हो जायेगी। तब शास्त्रों की सुरक्षा होगी और संस्कृति भी सुरक्षित होगी। अल्पसंख्या में भी ब्राह्मण होने पर भारत पुनः जगद्गुरु बनने की दिशा में चल पड़ेगा।

इस योजना में शासन का सहयोग यही पर्याप्त है कि कोई मिथ्याचारी विवोध न करने पाये।

ब्राह्मण का आदर्श वशिष्ठ और विश्वामित्र आदि हैं। परशुराम तो उसका आकस्मिक स्वरूप हैं जो धर्म की प्रतिष्ठा और समाज के कल्याण के लिये होता है। तब संगठन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। न्याय का समर्थन करना तथा अन्याय का विरोध, यहीं एकता होनी चाहिए। ब्राह्मण का लौकिक स्वार्थ नहीं होता है। उसका क्रोध भी परोपकार के लिए होता है। ऐसे आदर्शों के साथ जीने का संकल्प हो तो ब्राह्मण रहे। ज्ञान और वैराग्य की साधना से शक्तिमान रहने पर निर्भय रह सकते हैं। इस समय भयग्रस्त समाज के लिए यह अमोघ सन्देश है।

दुनिया का प्रपंच छोड़कर भजन करना ही निर्भय रहने का मार्ग है, ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं। किन्तु यह अर्धसत्य है। ईश्वर प्राणिधान के साथ स्वधर्म का पालन न करना पलायन और निन्दनीय माना जाता है। कर्मकाण्ड और लोककल्याण तो ब्राह्मण के स्वधर्म में निहित है। लोकहित में शिव भी समाधि छोड़कर विषपान करते हैं। इससे विचलित होना अनार्य संस्कृति की देन है जिससे देश गुलाम हो गया था। ब्राह्मण अपनी योग्यता बढ़ायें तो सारा समाज सुरक्षित होगा। समाज को व्यवस्थित करके समाधि लेने वाले आचार्य शंकर ब्राह्मण के आदर्श हैं। अपनी सामर्थ्य के अनुसार हम भी इसी मार्ग पर चलें। यही सन्मार्ग एवं लोकसेवा है।

सामाजिक जीवन में नैतिक संगठन का नेतृत्व करना या किसी दल में न रहकर नैतिकता का समर्थन करना भी ब्राह्मणोचित है। स्वार्थ के लिए राजनीतिक दल की सदस्यता बौद्धिक गुलामी है। बिकाऊ होने पर ब्राह्मण का मूल्य घट जाता है। ब्राह्मण बिकता नहीं दूसरों को अपने उपकार से खरीदता है। मूल्यों की रक्षा के लिए, आवश्यकता की पूर्ति भर के लिए पवित्र धन की व्यवस्था करना तथा संचय से दूर रहना हितकर है। धन, पद, प्रभुता आदि वैश्य व क्षत्रिय वर्ण के लोगों को देकर केवल सुयश और धवल कीर्ति की कामना के लिए लोकसेवा करना ब्राह्मणत्व है। आचार्य चाणक्य हमारे आदर्श हैं।

जाति के आधार पर अनेक संगठन देश के लिए समस्या बने हैं। जातीय नेता अपने ही लोगों को बेवकूफ बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। इस दुराचरण से ब्राह्मण को बचना है। जाति का भेद छोड़कर नैतिकता, न्याय और संस्कृति की रक्षा के लिए संगठन बनाना समय की माँग है। जातिमात्र से ब्राह्मणत्व नहीं रहेगा। गुण, कर्म और स्वभाव से ब्राह्मण बनना श्रेयस्कर है।

[24]
सत्ता और विपक्ष

यह चुनाव (लोकसभा 2019) परिणाम से संकेत दे रहा है कि भारत में लोकतंत्र संकटग्रस्त है। विरोधी दल के सबल न होने पर शासन के निरंकुश होने का भय उत्पन्न होता है। जाति, क्षेत्र और निहित स्वार्थों पर आधारित दल हर प्रदेश में हैं। विरोधी दल के रूप में केवल काँग्रेस थी जो लगभग समाप्त है। वर्तमान ढाँचे को नहीं बदला तो कांग्रेस छिन्न-भिन्न हो जायेगी। ऐसी स्थिति में एक नैतिक राजनैतिक दल की स्थापना परम आवश्यक है। काँग्रेस के ही प्रबुद्ध लोग इस कार्य में आगे आएँ तो कार्य आसान हो जायेगा। ऐसे नैतिक दल को ईमानदार चिन्तकों का समर्थन मिल जायेगा। विकल्प के अभाव में वोट एक जगह गया है। सबल विकल्प प्रस्तुत करना देशप्रेमियों का कर्तव्य है। ऐसा होने पर निरंकुशता का भय नहीं रहेगा।

[25]
मित्र

फेसबुक पर मित्र अकस्मात् मिल जाते हैं। पुराने मित्रों से भेंट होने पर प्रसन्नता होती है। मित्र शब्द परीक्षित एवं विश्वसनीय तथा समान व्यक्ति के लिए प्रयोग होना चाहिए। फेसबुक पर साथी या समानधर्मा ही आरंभ में कहे जाएँगे। परीक्षण के बाद मित्र वे भी हो सकते हैं। लेकिन साथी भी महत्वपूर्ण हो सकता है। केवल फोटो दिखाने में कोई लाभ नहीं है। विश्वसनीय एवं प्रेरणादायक संदेश देने वाले साथी का आभार स्वीकार करना कृतज्ञता है। ऐसे मित्रों एवं साथियों का अभिवादन करता हूँ।

[26]
प्रकृति का कोप

चरकसंहिता में जनपदोध्वंश प्रकरण में लिखा है कि बड़े-बड़े लोग असत्य का सहारा लेकर स्वार्थ सिद्ध करने लगते हैं तो प्रकृति कुपित हो जाती है। तब सूर्य और चन्द्र की रश्मियाँ दूषित हो जाती हैं। ऐसा होने पर सामूहिक विनाश होता है क्योंकि प्रकृति का वात, पित्त, कफ असंतुलित हो जाता है। व्यक्ति और प्रकृति के आचरण में कार्य-कारण सम्बन्ध होता है। कार्यकारण सम्बन्ध न दिखाई पड़ने पर आश्चर्य होता है। बुद्धिमान व्यक्ति आश्चर्य में नहीं पड़ता है। आज की समस्याओं का कारण इसी आधार पर जाना जा सकता है।

[27]
अशुभ परिवर्तन

हमारी संस्कृति में योग्यता और जीवन के मूल्य के आधार पर समाज चार वर्णों में विभाजित था। अब अगड़ा और पिछड़ा या दलित और पूँजीपति के रूप में दो भागों में होता जा रहा है। मध्य में कोई न रहेगा। इसे ही समाजवाद या समरसता का प्रयास माना जाता है। किसी देशकाल में जो नहीं हुआ है उसका प्रयास मिथ्याचार है। प्रवंचना से समाज का अहित होगा। हम अपनी संस्कृति को आदर देते रहे, इसी में कल्याण है।

[28]
प्रशंसा/निन्दा

प्रशंसा या निन्दा का महत्व उसके करने वाले की प्रतिष्ठा के अनुसार होता है। मूर्ख की बात पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए। विद्वान की बात पर चिन्तन और शिक्षाग्रहण करना बुद्धिमानी है। यही बात दूसरे के विषय में सुनने पर भी सोचना उचित है। निन्दारस का परिपाक बुरा होता है। कोई धारणा बनाने के पूर्व इन बातों पर ध्यान देना लाभकर है। यह बातें सामान्य आदमी के लिए हैं। मनु भगवान ने मनःपूतं समाचरेत् की शिक्षा देकर ऊपर की नीति की आवश्यकता ही समाप्त कर दी है। मन को पवित्र करके आचरण करने पर प्रशंसा या निन्दा पर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं रहती है।

[29]
उमा–शब्दार्थ

उ को आगे रखने पर बद्ध भी बुद्ध हो जाता है। उ का अर्थ तपस्या है। उमा नाम की व्याख्या में यह अर्थ बताया जाता है। माँ ने उमा यानी तप योग्य नहीं अर्थात् सुकुमारी के अर्थ में पार्वती का नाम उमा रखा था। बुद्ध तप से अपना नाम सार्थक किए हैं।

[30]
राज्य का दायित्व

आजकल इतने जघन्य अपराध और घोर निन्दा के योग्य आचरण पढ़ने और सुनने को मिलते हैं जिन पर प्रतिक्रिया देने के लिए शब्द नहीं हैं। अपराधी को फाँसी देना आदि तो कानून करेगा, किन्तु इससे समस्या का निराकरण नहीं होगा। क्या इसीलिए हजारों सपूतों ने बलिदान दिया था? युधिष्ठिर के राज्य में ब्राह्मण द्वारा स्वर्णपात्र चोरी करने पर बलि ने निर्णय दिया था कि इसमें राजा अधिक दोषी है। आज अपराधी की मानसिकता पैदा करने वाले समाज के शोधन की आवश्यकता है। यह कार्य शासन ती कर सकता है। सारी जिम्मेदारी शासन की है। समाज को विकृत भी राजनेताओं ने किया है। उन्हीं नेताओं और शासन के शुद्धीकरण की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पहले की भावना पैदा होने पर ही देश का कल्याण होगा। युगपुरुष ही इसे कर सकेगा। वर्तमान नेताओं में से भी कोई यह सुयश लेने को तैयार हो सकता है। ईश्वर सद्बुद्धि दे।

[31]
राजकीय कार्यों का वरीयता क्रम

राज्य का सर्वप्रथम कार्य शान्ति व्यवस्था है। सांस्कृतिक दृष्टि से संतुष्ट एवं मात्स्य-न्याय से मुक्त होने पर ही समाज में व्यवस्था बनी रहती है। इसके बाद दूसरा कार्य व्यक्ति की उन्नति के लिए अवसर प्रदान करना है। समता एवं न्याय की प्रतिष्ठा से ही यह सम्भव है। देश की सीमा की सुरक्षा तीसरा महत्वपूर्ण कार्य है। इसके बाद विकास के कार्य करना उचित है जिसमें सर्वप्रथम शिक्षाव्यवस्था है। आबादी की दृष्टि से रोजगार की व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण है। तदनन्तर सड़क रेल आदि अन्य विकास के कार्यों का औचित्य है। इस चौथे कोटि में अनेक कार्य हैं। दैवी आपदा में सहायता भी आकस्मिक कार्य है। मुफ्त में सामान्य समय में धन वितरण राजकीय कोष का दुरुपयोग है। इससे समाज का भी अहित होता है। इनके बाद अनेक कार्यों में वरीयता निर्धारित हो सकती है। विकास के कार्य में सावधानी आवश्यक है। इसकी बाढ़ में सांस्कृतिक सम्पदा की सुरक्षा करना प्राथमिकता है।

प्रथम दो बिन्दु संस्कृति एवं संविधान से सम्बन्धित हैं। इस विषय को विस्तार के साथ समझने के लिए हमने भारतीय संस्कृति एवम् संविधान नाम से एक लघु आकार की पुस्तक लिखा है। जनाकांक्षा की पूर्ति तथा शासन की सफलता के लिए संविधान में कुछ

संशोधन का सुझाव भी दिया है। अभी इस पुस्तक का प्रकाशन नहीं किया है। उपयोगी समझने पर एक दो माह के अन्दर प्रकाशित किया जा सकता है।

[32]
भ्रष्टाचार का मूल

समाज और शासन को भ्रष्टाचार से मुक्त रखने का संकल्प है तो सर्वप्रथम संसद और विधानसभा पर ध्यान केन्द्रित किया जाय। भ्रष्टाचार का बीज वहीं है। न्यायसंगत कानून बनें तो भ्रष्टाचार की जड़ ही सूख जाय। पाँच सौ राजकीय कर्मचारियों को पकड़ने से अधिक प्रभाव पाँच माननीयों को कटघरे में करने से पड़ेगा। परछाईं पकड़ने से काम नहीं बनेगा। पुरूष के पकड़ने पर परछाईं स्वतः पकड़ में आ जाती है। कर्मचारी परछाईं हैं। उन्हें नौकरी प्रिय होती है। वह भयभीत हो सकता है नेता निरंकुश और निर्भय होता है। कर्मचारी को भय और लोभ दिखाकर नेता ही भ्रष्ट बनाते हैं। चोरी से किया गया भ्रष्टाचार थोड़ा सा हो सकता है जो नैतिकता की शिक्षा तथा दण्ड के भय से दूर हो सकता है। पहले दण्ड देने वाले का शोधन आवश्यक है। ईश्वर का भय होने पर सभी ईमानदार हो सकते हैं।

[33]
सन्देश

नैतिक राजनैतिक संगठन की स्थापना करने पर ईश्वर की भी कृपा होगी। जो अपनी सहायता करता है उसकी सहायता ईश्वर भी करता है। नाश्रान्तस्य सख्याय देवाः। ऐसा राजनीतिक दल बनाया जाय।

[34]
नैतिक सामाजिक संगठन

नैतिक राजनैतिक संगठन बनाने के लिये नैतिक सामाजिक संगठन की आवश्यकता पहले है। समाज से ही नेता भी पैदा होते हैं। बालकों के लिये सदाचार, नैतिकता, ईश्वर की सत्ता, कर्मवाद का सिद्धांत जैसी बातों की शिक्षा देना प्रथम कार्य है। दूसरा कार्य उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी तथा बड़े लोगों को नैतिक, न्यायप्रिय, निर्भय, समाजसेवी, संस्कृतिप्रेमी बनने की प्रेरणा देना है। इन कार्यों के लिए गोष्ठी, सभा आदि करना एवं उपयोगी साहित्य उपलब्ध कराना ही माध्यम है। श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान, मिर्जापुर यूपी द्वारा यह कार्य आरंभ किया गया है। सांस्कृतिक स्वतंत्रता एवं राजनैतिक शुचिता के लिए स्वतंत्रता के पहले वाली भावना के लोगों की आवश्यकता है। ऐसा होने पर नैतिक राजनैतिक संगठन बन सकता है।

सामाजिक पक्ष के लिए हमारे कार्यक्रम में गति देने तथा राजनैतिक पक्ष को आरंभ करने वाले सक्षम और समर्पित लोग स्वतंत्रता सेनानी के कोटि के माने जायेंगे। स्वतंत्रता का वास्तविक फल पाने के लिए यही उपाय है। अभी हम सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पराधीन हैं। पूर्ण स्वतंत्रता का प्रयास समय की माँग है।

[35]
नैतिकता की राह

"संसार महँ पूरूष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा" ऐसा तुलसीदास ने लिखा है। यानी कुछ लोग कहते नहीं, करके दिखाते हैं, कुछ लोग कहते हैं और करके भी दिखाते हैं तथा कुछ लोग कहते बहुत हैं किन्तु करते नहीं हैं या कहने के विपरीत करते हैं। इस तरह तीन तरह के लोग होते हैं। हमारे नेताओं की छवि तीसरे कोटि के लोगों में है। प्रथम और द्वितीय तरह के लोगों को लाने के लिए नैतिक सामाजिक संगठन की आवश्यकता है। लोगों के नैतिक होने पर संगठन अपने आप बनेगा। अच्छाई का समर्थन और बुराई का विरोध करने का साहस नैतिकता से ही संभव है। इस समय इसकी आवश्यकता है। न करने पर "अहह मन्दमति अवसर चूका, अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका" की भावना, अपने बच्चों की दुर्दशा देखकर, अन्त तक पीड़ित करेगी। आइए नैतिक सामाजिक संगठन की स्थापना करें।

[36]
दलितोद्धार

अपने देश में दलितों और पिछड़ों का वास्तविक हित उनकी योग्यता बढ़ाने से ही होगी। स्वावलम्बन और स्वाभिमान की भावना पैदा करना जरूरी है। स्थायी रूप से दलित बने रहनेकी भावना दृढ़ हो गयी है। Where ignorance is bliss it is folly to be wise. जहाँ अज्ञान ही वरदान वहाँ बुद्धिमान होना मूर्खता है, यही चरितार्थ हो रहा है। इस भावना को हटाकर, समानता के साथ मुख्य धारा से जुड़ने के लिए उन्हें स्वाभिमान की आवश्यकता है। यह चेतना आने पर आपसी मेलजोल से उनका सही विकास होगा। गरीब कोई हो सकता है। उसकी सहायता सरकार को करनी चाहिए। दलित के रूप में पहचान रखना अशोभनीय है। यह भावना आने पर आरक्षण और संरक्षण की माँग स्वतः समाप्त हो जायेगी। नैतिक सामाजिक और राजनैतिक संगठनों के बनने पर ही सामाजिक समरसता बनेगी।

[37]
योग साधना

अपने देश में अनेकसम्प्रदाय हैं। सब के यहाँ योग साधना के अलग-अलग विधान हैं। वैदिक कर्मयोग सबसे पुराना है। ग्यानयोग तथा कर्मयोग दो तरह के योग वेदप्रतिपादित हैं। इन्हीं के आधार पर अन्य तरह के योगों का ऊहन किया गया है। गीता का कर्मयोग वैदिक कर्मयोग के बहुत सन्निकट है। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम। यह तीन गीता के कर्मयोग में अवश्य करणीय बताये गये हैं। यही तीनों कर्मयोग के कक्ष को खोलने की चाभी हैं। इसी प्रकार सभी सम्प्रदायों के क्रियायोग हैं। योगशास्त्र के लिए, तपःस्वाध्याय ईश्वरप्राणिधानि क्रियायोगः ऐसा सूत्र है। पातंजलि योग के आसन, प्राणायाम ही अब योग माने जाते हैं। दुनियाँ में योग दिवस पर इसी का

प्रचार रहा। इतना भी सही ढंग से होसके तो शरीर का स्वास्थ्य तथा मन की एकाग्रता संभव है। मन के एकाग्र होने पर शक्ति मिलती है। इस शक्ति से पतन का भय अधिक रहता है। अतः इसके प्राप्त करने के पहले यम, नियम के पालन द्वारा पात्रता प्राप्त करना आवश्यक है। आसन, प्राणायाम तो दुराचारी भी कर सकता है।

अष्टांग योग का सेवन करना जरूरी नहीं है। किन्तु यम, नियम, आसन, प्राणायाम, चार अंग तो अनिवार्य हैं। भारतीय संस्कृति तथा साधना का सही प्रचार करने के लिए इस पर ध्यान देना पड़ेगा। यहाँ सभी साधनाओं के लिए 'आचारः परमोधर्मः' ही मान्य है।

[38]
राजनैतिक दल की सदस्यता

आजकल भारत के किसी भी राजनैतिक दल की सदस्यता लेने वाला लोभ, स्वार्थ या गड्डलिका प्रवाह के वशीभूत होता है। सत्ता की प्राप्ति के लिए दलगत भेद हैं। सब के कार्य एक ही तरह के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। उदाहरण के लिए कुछ सामूहिक निर्णय देखें। विदेशों से चन्दा लेने के नाम पर आर्थिक अपराध रोकने के लिए Foreign contribution regulation act 1976 में बना था। वर्ष 2018 में इसमें संशोधन करके हेराफेरी करने की स्वतंत्रता कर दी गयी। यह संशोधन सभी दलों की सहमति से हो गया। इसी तरह सांसद, विधायक के वेतन, भत्ता, पेंशन, सांसद निधि तथा सुविधा बढ़ाने के बिल सर्वसम्मति से पास होते हैं। आरक्षण, एससी एसटी ऐक्ट, अल्पसंख्यकों के लिए विशेष व्यवस्था जैसे कानून सर्वसम्मति से पास होते हैं। इनमें पार्टी तथा सदस्यों का हित देखा जा रहा है। समाज, संस्कृति, राष्ट्र, न्याय, समता के अधिकार तथादेश की अनेक जटिल समस्याओं के विषय पर खूब विवाद होता है तथा कोई भी सही काम नहीं होने पाता है। प्रचार चाहे जो हो रहा है, किन्तु गिनाए गए मुख्य बिन्दु बदतर स्थिति पर पहुँच रहे हैं। ऐसे दलों के सदस्य बौद्धिक रूप से बिके हुए हैं।

अतः नैतिक राजनैतिक संगठन बनाने वाले युगपुरुष की प्रतीक्षा है। सवर्ण, मध्यम वर्ग और देशप्रेमी कोटि के लोग आतुरता से ऐसे संगठन की प्रतीक्षा में हैं।

[39]
नैतिक सामाजिक संगठन का उद्देश्य

नैतिक राजनैतिक संगठन के लिए, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष में पाँच बिन्दु प्रथमतः ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम, जाति, धर्म, लिंग आदि के भेद को छोड़कर, गरीबी और पिछड़ापन के आधार पर, सबको समर्थ और योग्य बनाने की नीति लागू करना। द्वितीय, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का भेद छोड़कर, सबकी सुरक्षा तथा उन्हें समान अवसर देना। तृतीय, भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए, सब के लिए समान आचार संहिता लागू करना। चतुर्थ, गाँवों को राजनैतिक की जगह सामाजिक इकाई बनाना। गुरुकुल प्रणाली से आरंभिक शिक्षा देना। पढ़े लिखे तथा समझदार लोगों को प्रतिष्ठित मानना । चुनाव द्वारा प्रधान के पद को समाप्त करना। ग्रामसभा को आर्थिक

अधिकार न देकर भ्रष्टाचार और कलह को समाप्त करना। पंचम, जाति, लिंग, भाषा, सम्प्रदाय, प्रदेश जैसी भेदकारी बातों को छोड़कर समानता और सांस्कृतिक स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा करना। इसके लिए संविधान में यथेष्ट संशोधन करना। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हमारा संविधान ब्रिटिश सरकार द्वारा गठित संविधान सभा द्वारा बनाया गया है। भारत को सांस्कृतिक रूप में गुलाम रखने की तथा समाज में फूट डालने की प्रच्छन्न योजना अब सभी को स्पष्ट है। संविधान में संशोधन की व्यवस्था है। अतः अब भी सुधार कर सकते हैं।

[40]
गीता का कर्मयोग

गीता में कर्मयोग के विषय में लिखा है- योगः कर्मसु कौशलम् । कौशल का अर्थ फल-प्राप्ति से नहीं है। किसी कार्य में अभीष्ट, फल न मिलने पर यह नहीं मानना चाहिए कि कर्म में कुशलता नहीं थी। इसका अर्थ गीता के दूसरे श्लोक से समझ में आता है। वह है- कर्मण्यकर्मयः पश्येदकर्मणि कर्म एवं च। कर्म करते हुए फलासक्त न होना अकर्म है तथा कुछ न करते हुए भी मानसिक रूप से सम्बद्ध रहना भी कर्म है। इस तरह कुशलता का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अनासक्त कर्म करना ही कुशलता है। यह कुशल कर्म ही स्वधर्म के रूप में चित्तशुद्धि का कारण होता है। तब कर्म से सहज रूप से उपरति हो जाती है। इस अवस्था के पहले कर्मत्याग करना पतन का कारण होता है। अतः लोक कल्याण के लिए यावज्जीवन स्वधर्म पालन के द्वारा कर्मयोग की साधना निरापद है। ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत् शतं समाः''- यह ईशोपनिषद् का मंत्र उपर्युक्त मान्यता का समर्थन करता है।

[41]
आर्यभूमि की रक्षा

आर्य जाति, अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए जब तक आक्रामक थी, तब तक भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य विदेशों तक व्याप्त था। बौद्ध धर्मका प्रभाव, वर्णसंकरत्व, भक्तिसम्प्रदाय की पलायनवादी प्रवृत्ति जैसे कारणों से आर्यों का वर्चस्व समाप्त होने लगा। हम से भय मानने वाले विदेशी हमारे ऊपर आक्रमण करने का साहस करने लगे। यह समस्या लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व से आरंभ हुई तथा एक हजार वर्ष पहले हमें सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टि से गुलाम बना लिया। गुलामी की मानसिकता इतनी दृढ़ हो चली है कि उसके बाहर जाने की बात समझ में नहीं आती है। स्वतंत्रता संग्राम के समय एक बार हमारा स्वाभिमान जाग्रत हुआ था। किन्तु उसके बाद और जटिल रूप से पुरानी गुलामी की भावना ने आक्रांत कर लिया। अब पुनः जनजागरण द्वारा नैतिक सामाजिक संगठन बनाना एवं भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा करना महत्वपूर्ण कार्य है। ऐसे संगठन के बनने पर शासनसत्ता नैतिक लोगों के हाथों आ सकती है। नैतिक राजनैतिक संगठन के सुदृढ़ हाथों में सत्ता होने पर सारी समस्या का समाधान संभव है। अपने

पूर्वजों एवं स्वतंत्रता संग्राम के बलिदानियों का स्मरण करके हमें संकल्प लेने का समय यही है।

[42]
राजनीति का सार्वभौम सन्देश

किसी अधर्मी राजा का वध करना या, उसे अपदस्थ करना हमारी संस्कृति में भी विहित है किन्तु उसके राज्य का भोग करना हमारे यहाँ की परम्परा नहीं रही है। उस देश के लिए वहीं का शासक देना भी हमारी जिम्मेदारी होती थी। बालि को मारकर सुग्रीव को, रावण को मारकर विभीषण को, कंस को मारकर उसके पिता को, जरासंध को मारकर उसके पुत्र को राज्य देना हमारे आदर्श का निदर्शन है। यह सार्वभौम धर्म की मान्यता है। अरबी और यूरोपीय संस्कृतियाँ इस धर्मको नहीं जानती हैं। फलतः उन लोगों ने हमारे यहाँ अपनाराज्य स्थापित किया। केर बेर के संग में भारतीय संस्कृति को बड़ी क्षति हुई। हमारी कमजोरी का लाभ लेकर, अब भी, वे लोग धार्मिक एवं आर्थिक रूप से तथा सांस्कृतिक दृष्टि से गुलाम बनाने के प्रयास में हैं। बहुत कुछ सफल भी हो रहे हैं।इसकी उपेक्षा करने पर हमारा देश बिक सकता है, क्योंकि हमारे यहाँ, अब भी, आपसी फूट, रागद्वेष आदि विघटनकारी अवगुण समस्त समाज तथा राजनीति में व्याप्त है। ऐसे समय में एक लौह पुरुष की आवश्यकता है। ऐसा युगद्रष्टा ही नैतिक सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन खड़ा कर सकता है। सत्य का आश्रय लेने पर पतन का भय नहीं रहेगा। ''स्मरण रहे–विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातो शतमुखः'' और ''सत्यान्नास्ति परो धर्मः''।।

इस पवित्र संरचना के लिए नीव की ईंट बनकर हम भी कुतकृत्य हो सकते हैं। संस्कृति की रक्षा के लिए, अपनी अस्मिता को जानने वाले, प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति का यह कर्तव्य है। कहीं यह पश्चाताप न करना पड़े कि ''अहह मनदमति अवसर चूका, अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका।'' लोभ और भय छोड़कर सत्य और नैतिकता के निष्कंटक मार्ग पर प्रस्थान करें।

[43]
समस्या का मूलोच्छेद

इतिहास बताता है कि अरबी संस्कृति के लोग गुजर बसर के लिए समुद्र के रास्ते दक्षिण भारत में आये। उत्तर भारत में वे आक्रामक के रूप में घुसे। हमारी आन्तरिक फूट का लाभ उन्हें मिला और लगभग सारे देश में उनकी हुकूमत हो गयी। राजनैतिक दृष्टि से हम गुलाम बन गये, किन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष भारतीय ही बना रहा। राणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल आदि तो विदेशियों को भगाने के लिए लड़ते ही रहे, समाज ने भी उनको तिरस्कृत किया। राम जन्म भूमि के लिए सहस्त्रों साधुओं ने प्राण दिया। जजिया टैक्स दिया। किन्तु धर्म नहीं छोड़ा। गुरु तेग बहादुर सिंह ने बलिदान दिया और गुरु गोविन्द सिंह आजीवन लड़कर अमर हो गये। यह संघर्ष अन्तिम चरण पर पहुच रहा था,

जब पेशवा राजाओं ने मुगलों को मध्य प्रदेश के बाहर यमुना नदी तक खदेड़ दिया था। दिल्ली दूर नहीं थी, किन्तु देश का दुर्भाग्य था कि उसी समय, अंग्रेजों से लड़ाई लेना पड़ गया। आपसी फूट डालकर अंग्रेजों ने सत्ता प्राप्त कर लिया। इस तरह लड़ाई मुगलों से समाप्त हो गयी। हमारी लड़ाई ब्रिटिश शासकों से आरंभ हो गयी। स्वतंत्रता संग्राम में महाराष्ट्र के ब्राह्मणों ने सर्वाधिक बलिदान दिया था। स्वतंत्रता को जन्मसिद्ध अधिकार कहने वाले तिलक ही थे। इसके बाद लम्बी लड़ाई विख्यात है। अन्तिम दिनों में चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि तथा अदभुत प्रतिभा के धनी सुभाष चन्द्र बोस ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। गाँधी जी में संगठन तथा प्रभावित करने की क्षमता थी। अतः उन्हीं को श्रेय मिलना संभव हो गया। स्वतंत्रता के एक वर्ष पहले गाँधी जी का प्रभाव समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए नेहरू और अम्बेडकर को आगे बढ़ाया। उनके माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति को दृढ़ करने तथा जातिवाद और सम्प्रदायवाद को स्थापित करने का कुचक्र पूरा हो गया। साम्प्रदायिक समस्या गाँधी जी की देन है, कश्मीर समस्या एवं संस्कृति में विकार के लिए नेहरू की नीति और जातिवाद, आरक्षण संरक्षण आदि अम्बेडकर के माध्यम से अंग्रेजों की देन है। वास्तव में संविधान अंग्रेजों के प्रभाव से बना है। परिणामतः हमारी संस्कृति और राष्ट्रीय गौरव के साथ हमारा देश संकट में है। सुधार की आशा थी, किन्तु पूर्ववर्ती शासन से भी अधिक विकृत दिखाई पड़ रहा है। सम्प्रदाय के आधार पर नया पाकिस्तान बनाने वालों की आवाज बुलंद है। जे.एन.यू. जैसी संस्थाओं में से लगभग देश की अस्मिता को गिराने वाले लोग पैदा हो रहे हैं। ईश्वर नें सद्‌बुद्धि दिया तो सब ठीक हो जायेगा, किन्तु इसकी प्रतीक्षा छोड़कर नैतिक राजनैतिक संगठन बनाकर राष्ट्र और संस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास आवश्यक हो गया है। एक लौहपुरुष की आशा में यह आवाहन है।

[44]
जीवन की साधना

जीवन की साधना का एक रहस्य जानने योग्य है। यह सभी मानते हैं कि विवेकबुद्धि उच्चकोटि की उपलब्धि है। इसके प्रयोग से जीवन में पतन का भय नहीं रहता है। किन्तु यह बुद्धि की चरम उपलब्धि नहीं है। विवेक का प्रयोग करने में समय लगता है। तर्क का भी सहारा लेकर उचित अनुचित का निर्णय करना पड़ता है। जीवन में इससे बड़ी उपलब्धि भी है जो दुर्लभ है। वह स्वाभाविक विवेक कहा जा सकता हे। मिथ्या अहंकार के समाप्त होने पर शुद्ध अहं तत्व प्रगट होता है। तब स्वाभाविक विवेक पैदा होता है जो अबाधरूप से उपस्थित रहने के कारण बुद्धि की सहायता के बिना, तत्काल उचित निर्णय देता है। विवेक बुद्धि के द्वारा अहंकार को विगलित करके स्वरूप में स्थित व्यक्ति, प्रारब्धवश, जब तक जीवन धारण करता है, तब तक समाज के लिए सहजरूप से धर्म का आदर्श उपस्थित करता है। हमारे यहाँ ऐसे ही लोगों ने धर्मशास्त्र की रचना कर दी है। विवेक बुद्धि की सहायता से, अहंकार को समाप्त करना लौकिक जीवन की चरम उपलब्धि है। उसके बाद स्वाभाविक विवेक के प्रभाव से जीवनमुक्त की

अवस्था में, पारलौकिक शक्ति के द्वारा, समाज का मार्ग दर्शन करना अकर्म की अवस्था में महत्तम कर्महै। गीता का कर्मयोग प्रथम कोटि का मार्ग बताते हुए, द्वितीय कोटि में जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। द्वितीय कोटि के जीवनमुक्त पुरुष के लिए कोई शास्त्र नहीं बना है। निस्त्रैगुण्ये पथि विचरताम् का विधिः को निषेधः।

[45]
स्वाभिमान

भारतीय विद्याओं के प्रशंसक जर्मन विद्वान मैक्समूलर, तिलक की लिखी ओरायन पुस्तक को पढ़कर, प्रभावित हुए। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को लिखा कि तिलक विद्वान व्यक्ति हैं, इन्हें बड़े कार्य के लिए जेल से मुक्त कर दिया जाय। बाद में तिलक की लिखी आर्कटिक होम इन वेदाज तथा गीता रहस्य को पढ़कर, भारतीय प्रतिभा से प्रभावित होकर उसने भारत को स्वतंत्र करने की सिफारिश भी किया। एक दूसरे जर्मन विद्वान दार्शनिक, शापेनहावर ने उपनिषदों को पढ़कर कहा कि यह मानवबुद्धि की चरम उपलब्धि है। इस तरह हमारी मेधा से विश्वभर में विद्वत् जगत प्रभावित था।

विदेशियों द्वारा प्रेरित होने पर हमारा स्वाभिमान जाग्रत हुआ था। पुरानी प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए संघर्ष की शक्ति पैदा हुई। स्वतंत्रता संग्राम के समुद्रमन्थन में, हमारे बलिदानों से, सहस्त्र वर्ष बाद, अमृतघट तो मिला किन्तु वह विदेशियों की कूटनीति से, पाश्चात्य सभ्यता के पोषक लोगों के हाथ में चला गया। स्वतंत्रता का वास्तविक स्वरूप और लाभ दुर्लभ हो गया। सांस्कृतिक गुलामी प्रबलतर रूप में व्याप्त हो गयी। अब भी मुख्य समस्या की अनदेखी करके, प्रदर्शनकारी, अनोखी, लोकलुभावनी तथा सत्ता बचाने की कार्य प्रणाली चल रही है। इससे काम नहीं चलेगा। सत्ता का उपयोग मुख्य समस्याओं के निराकरण में पहले होना चाहिए। हमें सुशासन चाहिए। इसके लिए पुनः स्वाभिमान का जागरण अपेक्षित है। जनजागरण तथा नैतिक राजनैतिकता ही इस कार्य में सहायक होंगे। एक दीपक अनेक दीपकों को जला सकता है। स्वाभिमानी लोग इस दिशा में, थोड़ी संख्या में होने पर भी देश को सांस्कृतिक आजादी दिला सकते हैं। इतिहास में अमर होने का अवसर उपस्थित है।

[46]
गीता की चतुःसूची

अन्तःकरण की शुद्धि, सत्वशुद्धि, चित्तशुद्धि तथा आत्मशुद्धि यह सभी समानार्थक शब्द हैं। गीता में आत्मशुद्धि के लिए लिखा है–योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये। गीता के संदर्भ में कर्म का अर्थ स्वधर्म है। सत्वशुद्धि के लिए ही स्वधर्म का पालन किया जाता है। किन्तु व्यवहार में इससे लोकसंग्रह भी होता है। इसमें फल की आशा या निराशा कुछ नहीं रहती है। आशा या निराशा संग के लक्षण हैं जो कर्म में बाधक हैं। सुखदुखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ के द्वारा समभाव की आवश्यकता बतायी गयी है। इसी आधार पर, समत्वं योग उच्यते, कहकर समत्व को ही

योग का प्रमुख लक्षण बताया गया है। कर्मयोग को समझने के लिए गीता की चतुःसूत्री समझना चाहिए। वह है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् । मा कर्मफल हेतुर्भूः मा ते संगोस्त्वकर्मणि। इसी चतुःसूत्री की व्याख्या के लिए कर्म, अकर्म, विकर्म तथा यज्ञ, संन्यास, लोकपरलोक आदि विविध विषयों का निरूपण हुआ है। वर्तमान समय में जीवन की साधना के लिए, इससे सरल, उपादेय तथा निरापद मार्ग हमें नहीं दीखता है। नये बन रहे मार्ग कुछ दूर तक सरलता से पहुंचाने के बाद अंधेरे में छोड़ देंगे क्योंकि वे अशास्त्रीय हैं। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या कार्यव्यवस्थितौ कहकर गीता में सचेत किया गया है।किसी को गुरु बनाने में बड़ा भय है। शास्त्र को ही गुरु बनाना श्रेयस्कर है। इससे आत्मकल्याण के साथ लोक कलयाण की भावना बनी रहती है।इतर लोग लोककल्याण की बात भूल जाने के कारण न घर के न घाट के हो जाते हैं। कर्म योगी यशः शरीर से लोक में तथा आत्मशुद्धि के द्वारा अकर्म की स्थिति प्राप्त करके परलोक में भी अमर हो जाता है। शम् ।।

[47]
लोक जागरण

भारत में लोकतंत्र है।इसे सही अर्थ देने के लिए लोक को जिन्दा करना पडत्रेगा। इस समय लोक मृतप्राय है।जीवधारी प्राणी की तरह लोक नहीं मरता है। बाल में हवा भरने पर वह पुनः नया हो जाता है। समाज को पुनः स्वस्थ करना संभव है। जघन्य घटना पर लोक और उसके रक्षकों का मौन बहुत निराशाजनक है। सत्य किसी से नहीं छिपा है। सत्तारूढ़ दल स्वयं दोषी को दण्डित कराये तो दल निष्पाप हो जायेगा, अन्यथा दल भी अपराधी माना जायेगा। जिस तरह घटनाक्रम चल रहा है, वह सत्तारूढ़ दल को समाज की दृष्टि में पतित और सत्तालोलुप सिद्ध करता है। इसको राजनैतिक प्रकरण न बनाकर, सामाजिक न्याय की दृष्टि से देखना, शासन और राजनीति का कर्तव्य है।समाज में राजनीति की पवित्रता का आकलन करने और उसके अनुसार नेता चुनने की सामर्थ्य हो जाय, यही उसकी जीवनशक्ति का लक्षण है। एक स्वर से भ्रष्टाचार का विरोध हो तो शासन को झुकना पड़ेगा। वाक्स पापुली इज बाक्स डाइ---अर्थात् जनता की आवाज ईश्वर की वाणी है।आवश्यक है कि हम निर्भय होकर सत्य का समर्थन और असत्य का विरोध करते रहें।

[48]
निर्विवाद व्यक्तित्व

निर्विवाद व्यक्तित्व के लिए प्रथमतः–सत्य, न्याय, परोपकार, समभाव, विश्वसनीयता, विवेक, ज्ञाननिष्ठा, इन्द्रियनिग्रह कोटि के गुण आवश्यक हैं। इन गुणों के होने पर सुशील अन्यथा कुशील व्यक्ति कहा जाता है। बुद्धिमत्ता, मनस्विता, बहुज्ञता, स्मरणशक्ति, वक्तृता, तर्कशक्ति, शारीरिक बल, धनबल, मित्र बल, अनेक कौशल आदि द्वितीय कोटि के गुण हैं। इनसे लाभहानि दोनों संभव हैं। ऐसे लोगों को पदप्रतिष्ठा देते

समय सतर्कता आवश्यक है क्योंकि यह लोग बहुत अनिष्ट करने में सक्षम होते हैं। धर्म की गलत व्याख्या, पाखण्ड, समाज को पथभ्रष्ट करना आदि यही लोग करते हैं। प्रथम कोटि के गुणों के होने पर ही ऐसे लोगों की उपयोगिता है। इसी बात को संक्षेप में कहा गया है–

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोः विपरीतमेतत ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।

अतः बाल्यकाल में ही सत्य, सदाचार आदि प्रथम कोटि के गुणों के आधान की व्यवस्था शिक्षा में अनिवार्य है। शिक्षा प्रणाली में इसको महत्व दिया जाय। नैतिक सामाजिक संगठन का भी महत्वपूर्ण योगदान संभव है।

[49]
साध्य और साधन

साध्य और साधन (end and means) के विषय में, नीतिशास्त्र में, विविध प्रकार से पक्ष विपक्ष में तर्क दिये जाते हैं। चिंतन का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि किसी कार्य को करने में उसका लक्ष्य प्रधान महत्व का होता है या करने का साधन या दोनों। लक्ष्य और साधन दोनों अच्छे होने पर नैतिक एवं बुरे होने पर अनैतिक होना सर्वमान्य है।

कल्याणकारी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनैतिक साधन अनिवार्य होने पर निर्णय करते समय विवेक की आवश्यकता होती है। उस समय यह आकलन करना आवश्यक है कि लक्ष्य की प्राप्ति तथा अनैतिक साधन के प्रयोग, दोनों का सम्मिलित परिणाम कितना और किस के लिए हितकर या अहितकर है। तात्कालिक लाभ के लिए दूरगामी दुष्प्रभाव होने पर अनैतिक साधन का प्रयोग अनुचित है। थोड़ी सी हानि और अधिक लाभ की संभावन होने पर सार्वजनिक हित में अनैतिक साधन का प्रयोग उचित है। ऐसी स्थिति में अपना निजी हित गौंड़ होता है। लोक के कल्याण से उत्पन्न पुण्य से वह पूरा हो जाता है। व्यक्तिगत हित में अनैतिक साधन का प्रयोग निन्दनीय है क्योंकि इससे बुरा संस्कार पैदा होता है तथा लोक में निन्दा होती है। स्वच्छ वस्त्र पर दाग अधिक स्पष्ट होता है। गीता का सन्देश है-------संभावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते। अर्थात् लोकमान्य पुरुष के लिए अपयश मृत्यु से भी अधिक कष्टकर है।

[50]
लोकेषणा और लोक संग्रह

लोकेषणा और लोकसंग्रह दोनों शब्द सामाजिक कार्यों के विषय में प्रयोग में आते हैं। इनका अर्थ दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में पहुँचाता है। लोकेषणा स्वार्थमूलक होती है, लोकसंग्रह परार्थमूलक होता है। लोकेषणा भी निन्दनीय नहीं है। किन्तु अहंकार यशकीर्ति आदि का कारण होने से बन्धनकारक हो सकती है। लोकसंग्रह फल की इच्छा के बिना, सामाजिक कल्याण के लिए होता है। यह चित्तशुद्धि का कारण बनकर, मुक्ति का साधन है। एक फलसापेक्ष्य है, दूसरा फलनिरपेक्ष्य। लोकेषणा होने पर साध्य मुख्य हो जाता है,

साधन गौड़। लोकसंग्रह में साधन मुख्य होता है। गीता में लोकसंग्रह की शिक्षा दी गयी है किन्तु महाभारत के युद्ध में लोकेषणा स्पष्ट है। भीष्म, द्रोण, कर्ण का बध लोक संग्रह के लिए नहीं हुआ। इसमें विजय की इच्छा ही प्रधान कारण थी। यह विजय की इच्छा भी प्रशंसनीय है। सार्वजनिक कार्य करते समय व्यक्तिगत हित का त्याग करना पड़ता है। हारने के लिए युद्ध नहीं किया जाता है।

स्वतंत्रता की लड़ाई में उग्रता तथा अहिंसा दोनों के पक्षधर थे। लड़ाई तो हिंसा का कारण होती ही है। वही वास्तविक लड़ाई थी। अहिंसापूर्वक अनुरोध या अनशन, धरना से प्रदर्शन मात्र संभव था। उग्र लोगों के लिए युद्ध जीतने के सभी साधन उचित थे। अहिंसावादी के द्वारा अनैतिक उपाय निन्दनीय था। लोकसंग्रह के मार्ग पर चलते हुए जय-पराजय, लाभ-हानि आदि के द्वंद्वों में समबुद्धि आवश्यक है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए लोक संग्रह का मार्ग छोड़ कर लोकेषणा के मार्ग का सेवन करना अनुचित था। लोकसंग्रह के प्रति निष्ठा समाप्त हो गयी। सत्यसंकल्प को छोड़कर देश का विभाजन करा देना भारत की दुर्दशा का कारण बन गया। यह विभाजन लोकसंग्रह से प्रेरित उग्र पंथियों के लिए स्वीकार्य नहीं था। लोकसंग्रह के कार्य में पथभ्रष्ट होने के दुष्परिणाम से डरने की शिक्षा इसमें मिलती हे। लोकसंग्रह करने के लिये सत्यनिष्ठ बने रहना अनिवार्य है।

[51]
गुरु तत्व

ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास श्रद्धापूर्वक जाने का विधान हमारे शास्त्रों में दिया है। श्रोत्रिय या ब्रह्मनिष्ठ में से एक ही तरह का होने पर, वह साधक, गुरु होने के योग्य नहीं होता है। उदाहरण के लिए सायणाचार्य श्रोत्रिय थे किन्तु ब्रह्मनिष्ठ नहीं थे और उनके अग्रज माधवाचार्य दोनों थे। अतः अग्रज बन्धु ही राजगुरु रहे। सम्माननीय दोनों थे। कबीर दास, तुकाराम जैसे सन्त ब्रह्मनिष्ठ थे, किन्तु श्रोत्रिय नहीं थे। अतः यह लोग भी ज्ञानार्थ गुरु होने योग्य नहीं थे। तुकाराम ने शिवाजी के आग्रह पर भी, उन्हें दीक्षा न देकर समर्थ गुरु रामदास के पास भेज दिया। कबीर दास की अटपटी बातें समझना कठिन था। वे अपने अनुभव और साधना से शक्तिसम्पन्न योग के साधक हो गये थे। बड़ी ऊँची स्थिति पर पहुँचे हुए थे। श्रोत्रिय न होने के कारण विभिन्न शास्त्रों और सम्प्रदायों के रहस्य पर उनकी पहुँच नहीं थी। वैदिक कर्मकाण्ड, शिवार्चन आदि तथा मुल्ला की उपासना सब में रहस्य है। इनको एकदम से पाखण्ड कहने के बजाय सविधि करने का उपदेश समीचीन है। कबीर को उन्हीं की तरह के किसी सम्प्रदाय से असम्बद्ध लोगों ने गुरु भी बनाया।

आज के युग में तुकाराम और कबीर जैसे सन्त दुर्लभ हैं। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ मिलना असंभव है। अत; गुरुदीक्षा लेना जंजाल में फंसना ही है। ज्ञानार्थ प्रबल इच्छा होने पर शास्त्रों एवं इष्ट देवता की सेवा निरापद है। सदाचारपूर्वक, नैतिक आदर्शों का पालन करते हुए स्वधर्म का पालन करना सबसे उपयोगी गुरुमंत्र है।

[52]
संविधान में नया पदक्रम

अपने देश की अखण्डता, सुरक्षा, स्वाभिमान आदि महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित निर्णय, संविधान के अनुच्छेद 370 का हटाना, कोई भी समझदार, भारतीय अनुचित नहीं कहेगा। संविधान में संशोधन का प्राविधान है। राष्ट्रीय हित में कोई भी संशोधन विधिसम्मत है। इसका विरोध करने वाले जड़ता पूर्वक सत्ता पक्ष का विरोध करते हुये देश का ही विरोध करने में लगे हैं। आर्थिक नीति, बेरोजगारी, महंगाई, प्रदर्शन और पाखण्ड के लिए चलाई जा रही लोकलुभावनी योजनाओं आदि का विरोध होना चाहिए। अन्धा होकर केवल विरोध करते रहना दिशाहीनता है।

आगे बहुत महत्वपूर्ण संशोधन संविधान में अपेक्षित हैं। आरक्षण और संरक्षण की समस्या सबसे जटिल है। कश्मीर की समस्या एक प्रदेश की थी। आरक्षण की समस्या देशव्यापी है। वह फोड़ा था तो यह कैंसर है। अनधिकारी होकर भी पदासीन होना, मुफ्त भोजन वस्त्र मकान गैस बिजली, शिक्षा, दवा, इंश्योरेंस आदि के साथ एससी एसटी ऐक्ट के कवच और भीमसेना की शक्ति से सम्पन्न दलित लोग अपनी पदवी आसानी से नहीं छोड़ेंगे। इन लोगों को राजनैतिक संरक्षण देने वाले समृद्ध लोग इन्हें सदैव दलित बनाये रखना चाहते हैं। अपना वोटबैंक कोई नहीं छोड़ रहा है। अतः इन दलितों की उन्नति करना, इन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ना बहुत कठिन किन्तु अनिवार्य विषय है। इसके लिये तथा इससे उत्पन्न अनेक समस्याओं के निराकरण के लिए संविधान में प्रविष्ट, आरक्षण सम्बन्धी समस्त अनुच्छेद तथा अध्याय समाप्त करना, अगला कदम होना चाहिए। यह कार्य करने वाला व्यक्ति देश के इतिहास में अमर रहेगा। इसके बाद सांस्कृतिक स्वतंत्रता मिलने पर हम सही अर्थ में स्वतंत्र कहे जायेंगे।

[53]
ब्राह्मणत्व

प्राचीन ग्रन्थों में ब्राह्मण से सम्बन्धित आख्यान कहानी तथा आचार की चर्चा करते समय एक गरीब ब्राह्मण था, से प्रारम्भ किया जाता था। ब्राह्मण को निर्धन, दरिद्र जैसे शब्दों से विशेषित करके उसे दयनीय या अकर्मण्य कहना तो उद्देश्य नहीं होता था, क्योंकि आगे उसका उत्कर्ष और उसे आदर का पात्र भी दिखाया जाता है। वास्तवमें ब्राह्मण होकर दरिद्र रहना, उसका एक विशेषण था जो उसे पूर्ण ब्राह्मण बनाता था। उसकी दरिद्रता मजबूरी में नहीं, बल्कि स्वेच्छया आरोपित होती थी।धन की कमी से चिरकाल तक दुखी रहने वाला व्यक्ति, सन्तोष के अभाव में, ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है। धन के होने पर यज्ञ, दान में व्यय न करने वाला भी ब्राह्मण नहीं रह जाता है। स्वाभिमान की रक्षा के लिए, निर्धन रहकर सन्तुष्ट रहना, ब्राह्मण की जीवनशैली है।

आज ब्राह्मण के योग्य सम्मान सब चाहते हैं किन्तु पूंजीपति, सत्तासम्पन्न होने या स्वार्थ के लिए नीच की भी सेवा करने के लिए भी तत्पर हैं। दोनों का मिलना असंभव

है। त्याग, तपस्या तथा सन्तोष के साथ सत्य और न्याय के मार्ग पर चलकर ब्राह्मणत्व की रक्षा करने पर भी समाज यदि उचित सम्मान नहीं देता है तो विचलित न होकर समय की प्रतीक्षा करें। विश्वास उत्पन्न होने पर ही लोग अनुगमन करते हैं। चमत्कार दिखाकर तत्काल प्रभावित करने वाले लोग बंचक होते हैं। आत्मकल्याण और लोककल्याण की इच्छा है तो पूर्ण ब्राह्मण बनें। वैसे, सार्वजनिक हित का सिद्धान्त यही है कि स्वभाव और योग्यता के अनुसार, ईमानदारीपूर्वक, स्वधर्म का पालन करना उन्नति का अमोघ उपाय है। ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चाहे जिस कोटि में पूर्णता होने पर जीवन सार्थक हो सकता है। 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः गीता का उद्घोष है।

[54]
आदर्श और व्यवहार

महर्षि रमण ने दूसरे के साथ व्यवहार के विषय में पूछने पर कहा था कि दूसरा तो कोई है ही नहीं। एक ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति के लिए ऐसा ही अनुभव होता होगा। आत्मभाव की दृष्टि बहुत दुर्लभ है। व्यावहारिक जीवन का लक्ष्य भी पारमार्थिक सिद्धि का होना आदर्श है, किन्तु दोनों परिस्थितियों के आचरण का सम्मिश्रण करना मिथ्याचार है। आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँचा व्यक्ति आत्मभाव रखता है तो व्यवहार में सहानुभूति रखना ही तत्सम है। इसी तरह ग्याननिष्ठ की निस्पृहता की जगह व्यवहार में संतोष की वृत्ति, ऋत की जगह सत्य की उपासना, ईश्वरीय विधान की अपरिहार्यता की जगह न्याय (व्यावहारिक सत्य) की प्रतिष्ठा, अकर्म की जगह निष्काम स्वधर्म का पालन आदि उच्च आदर्शों से व्यवहार जगत का निर्वाह प्रशंसनीय है।

आजकल की सबसे बड़ी समस्या मिथ्याचार (पाखण्ड) है। सांसारिक प्रपंच में लिप्त लोग आध्यात्मिक उदाहरण देते हैं। आध्यात्मिक गुरु कहे जाने वाले लोग संसार के प्रपंच को समझाते हैं। कठोपनिषद् में 'छायातपौ ब्रह्मविदौ वदन्ति' कहते हुए, ऋषि ने कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग दोनों का भेद बताया है। अपने शास्त्रों का आलोक छोड़कर, अन्धेरे में मार्ग ढूंढ़ने वाले गुरु एवं शिष्य दोनों अन्धकूप में गिर रहे हैं।

गुरुसिसबधिर अंध कर लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा। -तुलसीदास

अपनी संस्कृति एवं शास्त्रों का आदर करना ही पड़ेगा। व्यक्ति, समाज एवं शासन हर स्तर से इसका प्रयास होना चाहिए। मिथ्याचार का निवारण एवं सदाचार की प्रतिष्ठा ही सभी समस्याओं के निराकरण का उपाय है।

[55]
संस्कृति का पुनरुद्धार

अपने देश के पूर्व गौरव को वापस पाने तथा विश्वगुरु के सम्मान का पात्र होने के लिए, हमें अपनी संस्कृति का पुनरुद्धार करना होगा। वर्तमान समाज एवं शासन का विपरीत दिशा में जाना स्पष्ट है। अपनी संस्कृति के बहुत से महत्वपूर्ण अंश हैं जिन

विषय पर कुछ विस्तार से, अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति एवं संविधान' में हमने लिखा है। यहाँ केवल दो-तीन बिन्दुओं पर चर्चा की जा रही है।

प्रथमतः वर्णसंकरत्व पर नियंत्रण आवश्यक है। रोजी, रोटी और बेटी इन तीन के विषय में सावधानी आवश्यक है। जीवन के लक्ष्य, योग्यता और स्वभाव के अनुसार जीवनयापन का साधन होना चाहिए। संयोगवश कुछ भिन्न तरह का कार्य करना पड़े तो भी फणिमणि न्याय के अनुसार मूल स्वभाव सुरक्षित रखा जाय। इसी तरह रोटी यानी अन्न को स्वच्छ ही नहीं, पवित्र रखना जरूरी है। बेटी यानी शादी विवाह के सम्बन्ध में संस्कार, स्वभाव आदि में समानता होनी चाहिए। इस तरह व्यवस्था होने पर अपने वर्ण के मौलिक गुणों का विकास होता है और पूर्णता की प्राप्ति होती है। (वर्ण का अर्थ जातिमात्र न समझा जाय)।

द्वितीय बिन्दु है, व्यक्ति समाज एवं शासन सभी के लिए मूल्यों का तारतम्य निर्धारित होना तथा तदनुसार उसकी श्रेणी का आकलन करना। व्यक्ति के लिए सत्य, न्याय, परोपकार जैसे सात्विक गुणों का होना सम्मान का विषय है। समाज के लिए सहयोग, विश्वास, स्वधर्म पालन जैसी बातें आवश्यक हैं। शासन के लिए शान्ति व्यवस्था, संस्कृति और देश की सुरक्षा, न्याय की प्रतिष्ठा जैसे विषय प्राथमिकता के साथ महत्वपूर्ण हैं। अपने प्राथमिक महत्व के कार्य को गौड़ करके द्वितीय कोटि के कार्यों को प्राथमिकता देना, अविश्वास का कारण और प्रदर्शन मात्र होता है। अतः मूल्यों का तारतम्य सुरक्षित रखना चाहिए। हमारी संस्कृति में मूल्यों के आदर का विधान है।

तृतीय बिन्दु ऊपर के मापदण्डों का विस्तार है। हमारी संस्कृति में योग्यता का अनादर निन्दनीय एवं विपत्ति का कारण बताया गया है। आदर न देने पर कुण्ठा एवं उत्तरोत्तर ह्रास होने लगता है। इससे अनेक संकट उत्पन्न होते हैं। सिद्धान्त हैं-

अपूज्याः यत्र पूज्यन्ते पूज्यानामवमानना। त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

अतः योग्यता का सम्मान करते हुए हम अपनी योग्यता की वृद्धि करें। पात्रता मिलने पर जगदगुरु बनने का लक्ष्य पूर्ण होगा।

[56]
युग धर्म

जिस युग, परिवेश, समाज और देश में रहना है उसकी आकांक्षाओं को जानना और तदनुसार आचरण करना लौकिक सफलता का मूलमंत्र है। प्रवाह के अनुकूल चलना सरल है। समाज में परिस्थिति के साथ समन्वय बनाकर अल्पज्ञ भी बहुज्ञ का पद पा जाते हैं। इससे परस्पर टकराव का भय समाप्त होता है तथा कार्य में निर्विघ्नता रहती है। पराशर स्मृति में लिखा है-

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः।।

समाज में युगानुकूल आचरण धर्मसम्मत बताया गया है। यह सामान्य व्यक्ति के लिए निर्धारित मार्ग है। विशिष्ट व्यक्ति सनातन मूल्यों के लिए उपक्रम करता है। उनका

आचरण देशकाल की सीमा से परे, शाश्वत सत्य की अनुभूति के लिए होता है। वह तात्कालिक सफलता की परवाह नहीं करता है। कलियुग में स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग संकीर्ण हो सकते हैं किन्तु बन्द नहीं हो जाते हैं। हर युग में चारों युगों के स्वभाव के लोग पैदा होते हैं। अपने स्वभाव के अनुसार जीने के लिए व्यक्ति मजबूर है। इसी से स्वधर्म का निर्धारण होता है। अतः शास्त्रसम्मत विधि से, स्वधर्म का पालन करना और सफलता या असफलता की परवाह न करना ही उत्तम जीवनचर्या है।

मनस्वी मृयते कामं कार्पण्यं न हि गच्छति।
अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ।।

अयोग्य लोगों का उत्कर्ष आश्चर्यजनक या ईर्ष्या का कारण नहीं होना चाहिए। यह भी युगानुकूल आचरण है।

पूरे कथन का तात्पर्य यह है कि युगरूप या शाश्वत जो भी अनुकूल हो, आचरण करना ठीक है। किन्तु शास्त्र की मर्यादा के अनुसार रहना चाहिए। भगवान व्यास ने गीता में कृष्ण के मुंह से शाश्वत धर्म बताया है किन्तु महाभारत युद्ध में कृष्ण का आचरण युगधर्म के अनुसार था। दोनों ही धर्मसम्मत हैं। मानवता से च्युत होना ही अधर्म है।

युगानुकूल आचरण में साध्य की प्रधानता रहती है जबकि शाश्वत मूल्यों पर आचरण में साधन की पवित्रता प्रमुख है।

[57]
मिथ्याचार-ग्रस्त संस्कृति का हेतु

भारतीय संस्कृति को कलंकित करने वाले बाबा लोगों का जेल जाना बड़ी विस्मयकारी घटना लगती है। पूरा सम्प्रदाय नग्न दिखायी दे रहा है। किसी लड़की से एकांत में बात करना तथा साथ रहना अपने में ही संदेशास्पद है। विश्वामित्र भी संयम नहीं कर सके। मनुस्मृति में इस विषय में, सावधानी के लिए स्पष्ट विधान है। पाखण्डी बाबा लोग तथा चरित्रहीन सफेद कालर वाले, सबके आचरण का गोपनीय परीक्षण होता रहे तो प्रतिदिन कुछ लोग जेल जाते रहेंगे।

कुछ और तरह के विचारों का आना यथावसर है। पुराने जबाने में विषकन्याओं का प्रयोग होता था। चाणक्य ने पर्वतक को विषकन्या देकर मरवाया था। आजकल दुर्बल चरित्र वालों को फंसाने और भयादोहन करने का धंधा चल पड़ा है। लड़के और लड़कियाँ मिल कर किसी प्रतिष्ठित सम्पन्न व्यक्ति को फंसाते हैं। यौनाचार का साक्ष्य लेकर भयादोहन करते हैं। कुछ दिनों बाद, माँग पूरी न होने पर एफआई आर या मीटू जैसी कार्रवाई करके जेल भेजवाने या बदनाम करने में सफल हो जाते हैं।

यह आचरण सामाजिक एवं कानूनी अपराध के रूप में देखा जाना चाहिए। जो जेल जा रहे हैं वे इसी के पात्र हैं। उनसे हमें भी घृणा है, लेकिन जो शिकायत कर रहे हैं उनका भी परीक्षण किया जाना चाहिए। तर्क संगत समय के अन्दर शिकायत न करने पर भी दण्डनीय समझा जाय। एकान्त में किसी स्त्री के साथ रहना सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय है। इस विषय में वैधानिक व्यवस्था भी होनी चाहिए। वर्तमान कानूनी व्यवस्था

भारतीय संस्कृति के अनुरूप नहीं है। चाल चलन, वेषभूषा आदि के विषय में सामाजिक नियम या माता-पिता के आदेश निष्प्रभावी हैं। समस्या का मूल स्थान यही है। शिक्षा एवं समाजीकरण के विषय में राजकीय नियमों में संशोधन या समाज को इसके लिए समर्थ बनाना राजधर्म है।

[58]
संस्कृति का प्रदर्शन

अपने देश या विदेश में भी विभिन्न अवसरों पर, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता है। उसमें क्षेत्र विशेष के नृत्य, गीत, वेशभूषा, स्वागत, अभिवादन आदि का प्रस्तुतीकरण होता है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। अपनी संस्कृति में प्रचलित परम्पराओं, आदर्शों, मूल्यों तथा वैचारिक एवं आध्यात्मिक सम्पदा को प्रस्तुत करना आधिक आवश्यक है। वैदिक काल से आज के सहस्र वर्ष पूर्व तक में उपलब्ध होने वाली ऐतिहासिक सामग्री हमारी संस्कृति का शुद्ध स्वरूप दिखाने के लिए पर्याप्त है। वेदोपनिषद् के आख्यान, रामायण, महाभारत, कथासरित्सागर, हितोपदेश, विशाल पुराण-साहित्य आदि से सामग्री लेकर नाटक, संवाद, संगीत व वाद्य या अभिव्यक्ति के अन्य आकर्षक साधनों से उनके संदेश का प्रचार एवं प्रदर्शन करना हमारी विशेषता होगी। सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर वर्तमान सभ्यता का प्रदर्शन बेमानी कार्यक्रम है। अपनी संस्कृति में नारी शक्ति, नारी की महिमा, उसका सही स्वरूप दिखाना, परोपकार आदि मानवीय धर्मों का आदर्श, अपने तथा लोककल्याण के लिए पंच महायज्ञ आदि का विधान, स्वधर्मपालन के लिए आत्माहुति तक तथा दानशीलता के आश्चर्यजनक उदाहरण आदि संस्कृति के सैकड़ों लक्षणों को प्रस्तुत करने पर हमारा स्वाभिमान प्रतिष्ठित होगा। इस तरह के छोटे या बड़े हर तरह के, सहस्रों आकर्षक कार्यक्रम बनाने की सामाग्री हमारे साहित्य एवं समाज में उपलब्ध है। इन कार्यक्रमों से हमारी संस्कृति का पुनरुत्थान भी संभव है।

[59]
नारी शक्ति की सही दिशा

नारी की स्वतंत्रता, सुरक्षा एवं सशक्तीकरण के विषय में राजनैतिक गतिविधि निराशाजनक है। इस विषय में नीतिनिर्धारण पाश्चात्य संस्कृति के आधार पर करना हमारी पराधीनता की मानसिकता का परिणाम है। मुगल काल के पहले तक, हमारे यहाँ नारी को पढ़ने, विचार व्यक्त करने, यात्रा करने आदि की स्वतंत्रता के अलावा गृहलक्ष्मी की उपाधि के साथ, विभिन्न अवसरों पर प्रथम पूज्य मानते हुए सम्मानित किया जाता था। पुत्र का माता की आज्ञा का पालन करना प्रथम कर्तव्य था। यह सारी व्यवस्था अब भी संभव है। पिता, पति या पुत्र/बन्धुवर्ग के संरक्षण में रहना स्वीकार करने पर तथा शीलवती बनकर नारी सर्वथा सुरक्षित और सम्मानीया रहेगी। अन्यथा होने पर–''कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी, कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव।'' यानि माता-पिता एवं पति, दोनों के कुल-

परिवार, संकट में पड़ते हैं तथा नारी असुरक्षित ही रहती है। वर्तमान समस्या के विषय में पहले भी लिखा गया है, अतः पिष्टपेषण नहीं किया जा रहा है।

समारा समाज पुरुषप्रधान रहा है। इस संस्कृति में रहने के लिए, अब भी ९९% महिलाएँ सहमत रहेंगी। कानूनी व्यवस्था से उन्हें न विचलित किया जाय। परम स्वतंत्र रहने पर नारी इस समाज में सुरक्षित न रह पायेगी। ऐसा स्वतंत्र जीवन चाहने पर शादी न करना ही उपाय है। इससे पति का परिवार सुरक्षित रहेगा। इस समय साधुसंतों तथा समाज के नेताओं के आचरण तथा लड़को और लड़कियों के स्वतंत्र संचरण से शर्मनाक स्थिति हो गई है।

इन सब बातों का उद्देश्य यह है कि समाज में पतिपत्नी के सम्बन्ध एवं नारी की सुरक्षा को निरापद रखने के लिए, वर्तमान वैधानिक व्यवस्था में भारी परिवर्तन करना पड़ेगा। नारी की स्वतंत्रता को उपयोगी सीमा में रखना चाहिए। समाज को संस्कृति के अनुसार सबल बनाना आवश्यक है। राजकीय व्यवस्था की प्रतीक्षा न करते हुए समझदार लोग स्वयं सतर्क रहने का संकल्प लें।

[60]
इतिहास की वास्तविकता

किसी घटना के बाद जो वर्णन और निर्णय लिखे जाते हैं, तात्कालिक प्रभाव के कारण वे कम विश्वसनीय होते हैं। यह इतिहास्ति कहा जायेगा। इतिहास में, समय से परिष्कृत होकर, विश्वसनीय सामग्री मिल सकती है। महाभारत से लेकर बाद के बहुत से वर्णन सत्ता में आने वाले पात्रों के गुणगान से भरे हैं। समाज ने उन्हें यथावत् स्वीकार कर लिया तो वही स्थापित सत्य हो गया। सत्ता के परिवर्तन से जब विरोध उत्पन्न होता है, तो मान्यता बदल सकती है। इस बदलाव में बहुत सतर्कता होनी चाहिए। परिवर्तन में अच्छी बातों को सुरक्षित रखना ही इमानदारी है।

आजकल, विगत शताब्दी की घटनाओं के इतिहास का पुनरावलोकन किया जा रहा है। कुछ लोग मानने लगे हैं कि भारत के स्वतंत्रता के प्रयास में गाँधी और नेहरू को वास्तविकता से अधिक प्रतिष्ठा दी गई। तिलक को उपयुक्त सम्मान नहीं मिला। चन्द्रशेखर, भगत सिंह आदि बलदानियों तथा नेताजी सुभाष जैसे सर्वातिशायी व्यक्तित्व के धनी को आतंकवादी माना गया है। अंग्रेजों के जाने के बाद उनको सर्वोच्च सम्मान का अधिकारी नहीं माना गया। नेहरू पर राजनैतिक अदूरदर्शिता, भारतीय संस्कृति का विरोध, सत्ता का लोभ, देश के विभाजन का समर्थन आदि के दोष आरोपित हो रहे हैं। गाँधी को बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक कामाचार में चरित्र के दुर्बल, अवसरवादी, सत्य और सहिंसा पर निष्ठावान नहीं बल्कि स्वार्थसिद्धि का साधन बनाने वाले, नेहरू के पक्षपाती, देश के विभाजन एवं साम्प्रदायिक समस्या का कारण आदि कमजोरियों से आरोपित किया जाने लगा है। यह सब बातें सही मानने पर भी इतिहास को उपयोगी बनाने के लिए, समन्वयात्मक दृष्टि आवश्यक है। इन लोगों के सर्वमान्य गुणों का आदर होना चाहिए।

नेहरू में आर्थिक विकास की महत्वाकांक्षा थी। इस विषय में तथा आर्थिक मामलों में उनके समय में इमानदारी रही। गाँधी में कई अनुकरणीय गुण थे। चिन्तन में एकाग्रता, पूर्णता के लिए छोटी-छोटी बातों की परवाह, संगठन करने की अद्भुत क्षमता, समय और परिस्थितियों पर दूरदृष्टि तथा उसका लाभ लेना, संस्कृति के प्रति सम्मान आदि गुण उनमें थे। विदेशियों तक मे उनकी एक छवि बन चुकी थी। उनके व्यक्तित्व से लाभ लेना तथा बुरायिों को त्याज्य समझना उचित होगा। समन्वय में ही इतिहास की उपयोगिता है।

[61]
इतिहास से प्रेरणा

समुन्नत सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सम्पदा, युद्धकौशल तथा वसुमती भारतभूमि के होने पर भी हम लोग क्यों परतंत्र और स्वाभिमानशून्य हो गये, इस प्रश्न का उत्तर इदमित्थम् देना कठिन है। भविष्य के लिए उपयोगी होने के कारण कुछ तथ्य प्रस्तुत हैं– (1) महाभारत के युद्ध के बाद क्षत्रियों में वर्णसंकरत्व हुआ, युद्ध और संहार निन्दनीय माने जाने लगे। कुछ ब्राह्मणों ने भी इसका समर्थन किया। जनश्रुति है कि बुद्ध नामक ब्राह्मण जो महाभारत के सौ वर्ष बाद थे, अहिंसावादी तपस्या का प्रचार किया। इसका प्रयोग व विस्तार गौतमबुद्ध ने किया। राजकुल से होने के कारण बौद्ध धर्म का प्रचार राज्याश्रय में तेजी से व्याप्त हो गया। सभी तपस्वी तो होते नहीं थे, अतः राजकुलों में भोग की प्रवृत्ति पैदा हुई। चाणक्य जैसे ब्राह्मणों ने नये कोटि के क्षत्रियों को स्थापित किया। अशोक के काल से पुनः प्रत्यावर्तन हुआ तो पुष्यमित्र ने वृहद्रथ को मारकर स्वयं राज्य ले लिया। ब्राह्मण-क्षत्रिय का सम्बन्ध बिगड़ना और वर्चस्व की लड़ाई इस देश के लिए सबसे अधिक घातक हुई। (2) बौद्ध धर्म को व्यक्तिगत साधना की जगह राजधर्म बनाने पर हमारी संस्कृति विकृत होने लगी। समय-समय पर ब्राह्मणों ने सँभालने का प्रयास किया किन्तु क्षत्रियों के सहयोग के अभाव में सफल नहीं हुए। ब्राह्मण और क्षत्रिय को अग्नि और वायु के रूप में महाभारत में अन्योन्याश्रित कहा गया है। सम्बन्ध बिगड़ने का दुष्परिणाम हुआ। (3) सदियों के अंतराल में, कुछ ब्राह्मण अपनी संस्कृति से चिपके रहे किन्तु अधिकांश भक्ति मार्ग की व्यक्तिगत साधना करने लगे। आचार्य शंकर के पीठों में भी उसका प्रभाव हुआ। वेदपाठ भी ओंकार से नहीं बल्कि हरिःओम से आरंभ हो गया। इसका प्रभाव यह रहा कि ब्राह्मण समाज का हित गौड़ करके, स्वार्थी भक्त हो गया। ब्राह्मणों का आदर न करने पर क्षत्री भोगलिप्त, दस्यु, स्वाभिमानरहित तथा स्वधर्म से च्युत होकर मनसबदार और जमींदार होने में सन्तुष्ट हो गया। (4) क्षत्रियों में आपसी द्वेष, लोभ और अहंकार के बढ़ जाने से वे एक-दूसरे के सहयोग की जगह, पराजय के कारण बन गए। अब जातीय संगठन दिखाई पड़ता है किन्तु ब्राह्मण के विरोध की भावना बनी है। अन्य कारण भी हैं किन्तु अतिविस्तार देखते हुए उपसंहार किया जा रहा है।

अब ब्राह्मण और क्षत्रिय की परिभाषा, गुण और स्वभाव से बनाकर, समाज का हितसाधन करना आरंभ करने का संकल्प लेना चाहिए। मूल्यों की न्यायंगत प्रतिष्ठा करने

पर हम गुलामी की मानसिकता से मुक्त हो पाएँगे। नीति निर्धारक तत्वों के निर्दोष होने पर स्वस्थ समाज बनेगा।

[62]
वीरभोग्या वसुन्धरा

एक दिन मैं सड़क के किनारे अपनी कार खड़ी करके, किसी की प्रतीक्षा में रुका था। उसी समय एक विक्षिप्त जैसा भिखारी कुछ माँगने लगा। मैंने दो रुपये दिया। भिखारी के कुछ और देने के लिए आग्रह करने पर, हँसी के लहजे में मैंने उससे कहा कि किसी बड़े आदमी के पास जाकर राज्य माँग लो। इसके उत्तर में उसने हमें शाश्वत नीति का ज्ञान करा दिया कि राज्य माँगा नहीं जाता है, उसे बलपूर्वक छीनना पड़ता है। वीरभोग्या वसुन्धरा की बात याद आ गई।

अहिंसा की नीति सामाजिक और मानवीय व्यवहार में बहु उत्तम है। राजनैतिक क्षेत्र में आदि काल से अब भी सामरिक शक्ति की अनिवार्यता स्पष्ट है। अर्थ के महत्व को प्रधानता देने पर भी सैन्य शक्ति के बिना सब असुरक्षित रहेगा। यह राजनीति का प्रथम उपदेश है। विश्वजित यज्ञ करने पर राजा सब कुछ दान देकर, मुकुट और सेना अपने पास रखता था। राम को सीता की खोज में भाई के साथ भटकते देख ब्याध राक्षस ने मरते समय दिव्य रूप पाने पर राम को उपदेश दिया कि सुग्रीव के साथ मैत्री करके सर्वप्रथम सैन्यशक्ति एकत्र करिए। उनकी शिक्षा को मानकर राम ने रावण को पराजित किया।

सामाजिक और राजनैतिक आदर्शों में मूल्य समान रहते हैं किन्तु प्राप्त करने के उपाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। समाज में हिंसा और राजनीति में अहिंसा का प्रयोग नीतिसम्मत नहीं है। दोनों नीतियों का यथास्थान प्रयोग करने की योग्यता कुशल व्यक्ति का लक्षण है।

[63]
चित्तशुद्धि के साधन

गीताशास्त्र में स्वधर्मपालन से आरंभ करके ज्ञाननिष्ठा, आत्मस्थिति या ब्रह्मनिर्वाण तक की शिक्षा दी गई है। स्वधर्म ही मूल है। इसी को आधार बताकर, अर्जुन को लोकनिन्दा, कायरता, अकीर्ति तथा सर्वविध पतन का भय दिखाते हुए, युद्ध करने को उद्यत किया गया। विषाद से लेकर पूर्ण आश्वस्त होने के क्रम में, अर्जुन के बहाने, सारा मुक्तिमार्ग बताया गया है। कर्म करने की अनिवार्यता बताते हुए, अन्यत्र भय होने के कारण, स्वधर्म को अपरिहार्य कहा गया है। कोई कर्तव्य न होने पर भी लोकसंग्रह का कार्य करने की शिक्षा दी गई है। समाज का मार्गदर्शन न करना भी निन्दनीय कहा गया है। इस कार्य में भी थोड़ी फलाकांक्षा होती है। अतः इससे भी बन्धन संभव है। इससे सुरक्षित होने के लिए निष्कामता का उपदेश है। फलाकांक्षा का अत्यंताभाव, जय-पराजय, लाभ-हानि आदि में समभाव को सुरक्षित साधना बताते हुए समत्वयोग की प्रतिष्ठा की गई

है। स्वधर्म से आरंभ करके समत्वयोग की साधना का अदृष्ट फल चित्तशुद्धि (आत्मशुद्धि) है–"यौगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये"।

यहाँ से ज्ञानमार्ग की साधना आरम्भ होती है। आत्मशुद्धि के बाद, उच्चतम स्थिति, अकर्म के नाम से अभिहित है। यह जीवनमुक्ति है। इसी समय के विषय में है–

नैव तस्य कृतेनार्थौ नाकृतेनेह कश्चन्। न चास्य सर्वलोकेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।।

ज्ञान मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए समत्वयोग के ही समान फलदायक, कर्मफल का ईश्वरार्पण भी बताया गया है। 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धं बिन्दति मानवः'–यह भक्तिमार्ग की साधना है। इससे भी चित्तशुद्धि हो जाती है, जिससे परमसाधना के मार्ग पर साधक आरूढ़ हो जाता है।

[64]
दोष दर्शन का व्यवसाय

सर्वत्र दोषदर्शन या आत्मप्रशंसा करने का व्यवसाय व्यक्ति को अविश्वसनीय बना देता है। इन दुर्गुणों से आध्यात्मिक तथा सामाजिक दोनों तरह की क्षति अवश्यंभावी है। आकाश में ऊँचाई पर उड़ते हुए गिद्ध की दृष्टि डंगर ढूँढ़ने में लगी रहती है। यही स्वभाव दोषदर्शकों का होता है। यह लोग मर के नीच यौनि में उत्पन्न होंगे, क्योंकि स्वभाव के अनुसार ही पुनर्जन्म का विधान बताया गया है। आत्मप्रशंसा को मृत्युतुल्य कहा गया है। इसके द्वारा आत्महत्या करने वालों को अनेक जन्म तक दुर्गति झेलनी पड़ेगी, यह शाश्वत सत्य है। इन दोनों प्रकार के लोगों का भविष्य, शास्त्र को न मानने पर भी, उनके जीवन के अन्तिम समय में ही लोकनिंदा और अनादर के द्वारा प्रत्यक्ष होता है। ऐसे लोगों का सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए।

आज के समाचार पत्र मात्र विज्ञापन-पत्र हो गये हैं। व्यावसायिक प्रचार या सत्ताधारी दल का गुणगान या विरोध करने के कारण सब अविश्वसनीय हैं। सही समाचार नहीं बल्कि झूठा विज्ञापन ही देखने को मिल रहा है। सभी राजनेता अपनी प्रशंसा करने में तत्पर हैं। किसी को भविष्य का भय नहीं है। प्रचार के सभी साधनों के दूषित हो जाने पर सामाजिक संगठन को स्वस्थ बनाना कठिन है। सही-गलत का निर्णय करके, प्रचार हेतु प्रबुद्ध लोगों तथा सामाजिक संगठनों को जनसंपर्क करना पड़ेगा। इस समय यही सबसे महत्वपूर्ण देशसेवा है।

[65]
ग्रामीण संस्कृति और शिक्षा

अब भी हमारा देश गाँवों में रहने वाला ही माना जाता है। शहरों में रहने वाले भी अधिकांशतः गाँवों से भी सम्बद्ध हैं। भारत का मूल स्वरूप गाँव में ही अवशिष्ट है। अतः ग्रामीण संस्कृति का संरक्षण यहाँ की संस्कृति को सुरक्षित रखने में सक्षम होगा। इसके लिए हमारा नैतिक-सामाजिक संगठन कुछ कार्य कर रहा है। इस कार्यक्रम को गति देने के लिए राजनीति से दूर रहते हुए गाँवों में साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक चौपाल, गोष्ठी

या सार्वजनिक हित के कार्यक्रम नियमित रूप से चलाना उपादेय है। इन कार्यक्रमों को सार्वजनिक स्वरूप में रखने के लिए निर्विवाद विषयों पर ही चर्चा की जाय। आपसी सहयोग की पुरानी परम्परा कायम करना, सार्वजनिक हित के कार्यों में राजकीय सहयोग, सफाई, व्यवहार में विश्वसनीयता जैसी पुरानी बातों को जाग्रत करना अब भी संभव है। रामायण, गीता, नैतिक शिक्षा, सदाचार आदि की शिक्षा को समझाने से अच्छे नागरिक बनेंगे। बालकों को गुरुकुल की परम्परा से प्राथमिक शिक्षा देने की व्यवस्था, सेवानिवृत्त अध्यापकों के माध्यम से संभव है। इन कार्यक्रमों को ग्राम प्रधान या किसी तरह के राजकीय प्रभाव से मुक्त रखने पर पूरी व्यवस्था होगी।

इस कार्य को करके भगवदर्पण करना कर्मयोग ही है। साधना के पथ पर आरूढ़ लोग भी इस लोकसंग्रह के कार्य को कर सकते हैं। नैतिकता के धनी लोगों से सहयोग मिलने पर ही यह कार्य पूरा होगा।

[66]
ग्रामोत्थान

गाँवों की संस्कृति को सुरक्षित रखने एवं उनके वास्तविक विकास के लिए बाधक तत्वों को दूर करना ही उपाय है। शिक्षा और रोजगार इन दोनों की उचित व्यवस्था से समाज जाग्रत और आत्मनिर्भर होता है। यह दोनों व्यवस्थाएँ वोट के इच्छुक नेताओं द्वारा विकृत कर दी गई हैं। सर्वप्रथम गाँवों को जातिवादी राजनीति से मुक्त करना है। ग्राम प्रधानों द्वारा गुटबन्दी, आपसी असहयोग आदि बुराइयों का प्रसार होता है। गाँव को इकाई बनाकर उस स्तर पर चुनाव की व्यवस्था बन्द करने के लिए शासन को राजी करना होगा। गन्दी राजनीति के प्रभाव से गाँव अपनी संस्कृति को छोड़ रहे हैं। दूसरा बिन्दु है–स्वस्थ राजनीति और सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान उचित शिक्षा से होगा। मानवीय गुणों का आधान करना शिक्षा का उद्देश्य है। इस दिशा में कार्य एक व्यक्ति भी आरंभ कर सकता है। तीसरा महत्वपूर्ण विषय रोजगार है। यह समस्या लोगों की विकृत मानसिकता तथा कृषि के विषय में राजकीय उपेक्षा के कारण गंभीर हो गई है। सिंचाई की व्यवस्था, सहकारी कृषि, उचित मूल्य आदि अनेक कार्य करने के लिए शासन का ध्यान आकृष्ट किया जाना है। इससे भी महत्वपूर्ण है कि लोग पैतृक व्यवसाय को न छोड़ें। इन व्यवसायों के लिए राजकीय सहायता मिलने पर हमारी युवाशक्ति का सदुपयोग एवं सामाजिक समस्याओं का निराकरण होगा। उद्योगों में भी नौकरी की जगहें हैं, इनके साथ कृषि और पैतृक व्यवसाय को प्रोत्साहन देने पर रोजगार की समस्या का समाधान होगा। गाँवों को छोड़कर बाहर जाने की वर्तमान समस्या का भी समाधान इसी से हो जायेगा।

इस योजना में सहयोग देने पर भक्ति या आध्यात्मिक साधना में विक्षेप नहीं, सहायता ही मिलेगी। अगर समाज के प्रति अन्यमनस्कता है, तो तामसी प्रवृत्ति है। आत्मकल्याण के लिए इसको दूर करके सहयोग हेतु सभी सक्षम व्यक्तियों से प्रार्थना है। सन्मार्ग पर एक कदम चलना भी कल्याणकारी है।

[67]
वैदिक मान्यताओं की अनिवार्यता

ईसावास्योपनिषद् में ऋषि वाक्य है–अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते। जीवन की साधना में यह वाणी विश्वसनीय ढंग से मार्गदर्शन करती है। इनका संक्षिप्त अभिप्राय है कि कर्ममार्ग की उपासना से चित्तशुद्धि होती है। इसके अनन्तर ज्ञानमार्ग से चलकर मुक्ति (आत्मस्थिति) मिलती है। दोनों की साधना करना ही श्रेयस्कर है। केवल कर्ममार्ग की उपासना से अन्धः तमस में पतन होता है तथा कर्म की उपेक्षा करके केवल ज्ञानमार्ग का ही सेवन करने पर घोर अंधःतमस की प्राप्ति होती है, यह उसी उपनिषद् में आगे कहा गया है। इसका अर्थ है कि अविद्या (कर्म) की उपासना से मृत्यु को पार करके विद्या (ज्ञान) की उपासना से अमृतत्व की प्राप्ति होती है अर्थात् जीवलोक में आने पर कर्म तथा अकर्म दोनों का सेवन करना पड़ता है।

महाभारत के युद्ध के बाद वैदिक मान्यताओं की उपेक्षा होने लगी। कर्ममार्ग को अनावश्यक समझते हुए सीधे ज्ञानोपासना के प्रचारक, बौद्ध और जैन धर्म अधिक उपयोगी मान लिये गये। इन धर्मों को राज्याश्रय भी मिला। कर्मकांड का नितांत विरोध भारतीय जनमानस को अभीष्ट नहीं है। अतः दो तरह के परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के बीच समाज दिग्भ्रमित होता रहा। नवीन धर्मों ने आर्यसंस्कृति को कमजोर किया। यद्यपि इन धर्मों का ज्ञानमार्ग भी वेदोपनिषद् से ही लिया गया है किन्तु केवल ज्ञान और तपस्या को ही अपनाने के कारण ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रमों के लिए अनुपयोगी बताकर वानप्रस्थ और संन्यासी बनाने की परम्परा चल गई। इससे समाज को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

अपने देश में वैदिक मान्यताओं का कोई विकल्प नहीं है। हमारी स्मृतियाँ अब भी प्रासंगकि हैं। भारतीय कहलाने के लिए यहाँ की संस्कृति की सुरक्षा अनिवार्य है।

[68]
अराजकता पर नियंत्रण

अभिमन्यु के मारे जाने पर अर्जुन ने अगले दिन जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की। ऐसा न कर पाने पर आत्महत्या तक की घोषणा कर दी दी। द्रोणाचार्य के सेनापति रहते हुए अर्जुन को संकल्प पूरा करना असंभव था। यही हुआ। व्यूह रचना करके मुख्य द्वार पर स्वयं रहकर आचार्य द्रोण ने अर्जुन और कृष्ण के पराक्रम को विफल कर दिया। अर्जुन पराजय स्वीकार करके आत्महत्या के लिए उद्यत हो गए। छल के द्वारा और अपनी गलती से जयद्रथ मारा गया। रक्षा करने का उत्तरदायित्व समर्थ लोग इस तरह निभाते थे।

आजकल देखा जा रहा है कि चुनौती देकर हत्या करने में लोग सफल हो जाते हैं। सरकार कोई सहायता करने में सफल नहीं होती है। कानून और व्यवस्था को सुदृढ़ करना राज्य का प्रथम और अनिवार्य उत्तरदायित्व है। इसके शिथिल रहने पर विकास और जनहित की सारी योजनाएँ प्रदर्शन और मिथ्याचार हैं। फूटे घड़े में जल की तरह सारा

राजकीय धन व्यर्थ जा रहा है। भ्रष्टचारियों के पास एकत्र होकर अर्थ ही अनर्थ का कारण बन रहा है।

इन सब समस्याओं का बीजवपन हमारी स्वफतंत्रता के समय ही हो गया था। अंग्रेजों के समय पराधीनता की भावना से पीड़ा होती थी किन्तु वर्तमान समस्या नहीं थीं। अराजकता और भ्रष्टाचार स्वतंत्रता के बाद बढ़ गये। अपनी संस्कृति पर और आघात स्वतंत्र भारत में ही खूब हो रहा है। इन सब समस्याओं का निराकरण करना लौहपुरुष से संभव है। सत्ता को स्थिर रखने की लालच छोड़कर, संविधान में समस्त आवश्यक संशोधन करते हुए समता, स्वतंत्रता, न्याय आदि की तर्कसंगत व्यवस्था करना तथा भ्रष्टाचार और अराजकता समाप्त करने पर भारतीय प्रजातंत्र की स्थापना होगी। देश को वास्तविक स्वतंत्रता इसी व्यवस्था से मिलेगी।

[69]
रामराज्य की कल्पना

रामराज्य का वर्णन करते समय संत तुलसीदास ने सर्वप्रतम लिखा है–रामराज बैठे त्रैलोका। बहुतन सुख बहुतन मन सोका। यानी सुराज में भी सभी सुखी नहीं रहते हैं। सन्मार्ग पर चलने वाले सुखी और कुमार्ग पर चलने वाले शोकाकुल रहें, यह रामराज्य का लक्षण है। गीता में भी है–

परित्राणायां साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

इन आदर्शों को ध्यान में रखने पर सबका साथ और सबका विकास की नीति का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए। सारस और लोमड़ी को भोजन एक थाली में देने पर सारस भूखा रह जायेगा। पात्रतानुसार अलग-अलग व्यवस्था करनी पड़ेगी। आजकल गरीबों के विषय में विकास का कार्यक्रम सदोष है। उनका हिस्सा भ्रष्टाचारियों के हाथ में जा रहा है जबकि इन भ्रष्ट लोगों का साथ और विकास के बजाय, नियंत्रण होना चाहिए। इनको निराश और असहाय कर देने में ही शासन की सफलता मानी जायेगी। उलटा हो रहा है।

[70]
गरीबी का मूल कारण भ्रष्टाचार

गरीबी के उन्मूलन के लिए विश्वस्तर से प्रयास हो रहा है। शोध और नोबेल पुरस्कार तक की व्यवस्था हुई है। भ्रष्टाचार के रहते कोई भी उपाय कारगर नहीं हो सकता है। गरीबी के दो स्पष्ट कारण हैं। पहला कारण है कि गरीबों का हिस्सा भ्रष्ट लोग खा रहे हैं। मात्स्यन्याय चल रहा है। इसका निवारण शासन के स्तर से सम्भव है। भ्रष्टाचार के उन्मूलन से अधिकांश कार्य हो जायेगा। दूसरा कारण स्वभावजन्य है। आलसी, निकम्मे, गैर-जिम्मेदार, यानी तमोगुण से अभिभूत लोगों की गरीबी कोई दूर नहीं कर सकता है। शिक्षा के द्वारा प्रयासमात्र सम्भव है। जनसंख्या निरोध भी शिक्षा से ही संभव है। इसको

प्राथमिकता के आधार पर पूरा करना ही सुराज्य लाने का उपाय है। गरीबी के निवारण में सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार है। यह तथ्य सभी स्वीकार करते हैं। पानी की तरह भ्रष्टाचार भी ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है। भ्रष्टाचार के कारणों को दूर करने पर वह समाप्त हो सकता है। इस समस्या के कारण, मानव स्वभाव तथा सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में निहित हैं।

नैतिकता, सदाचार, ईमानदारी आदि की शिक्षा माता-पिता से मिलने पर मनुष्य का स्वभाव समाज के लिए अनुकूल रहेगा। समाज में धर्मबुद्धि के द्वारा इस लोक और परलोक में सुखी रहने के लिए सन्मार्ग के उपाय को जनमानस में दृढ़ करना भी स्वतः संयम रखने में सहायक होगा। इन दोनों उपायों से न मानने वालों का राजदण्ड द्वारा निग्रह तत्काल करना अन्तिम उपाय है। यह तीनों उपाय इस समय निष्प्रभावी हैं। उपाय ही स्वयं समस्या है। जलेबी की रखवाली कुतिया नहीं कर सकती है। स्वभावतः आदमी आसानी से अधिकतम लाभ लेना चाहता है। नियतविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगात् ......अधिकांश लोग दण्ड के भय से ही सही रास्ते पर रहते हैं। सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों को कौन दण्ड दे?

भ्रष्टाचार केवल आर्थिक ही नहीं होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह व्याप्त है। कामाचार, अर्थसंग्रह, परस्पर व्यवहार, कर्तव्यपालन आदि से लेकर नीति निर्धारण, कानून बनाना, कार्यान्वयन न्याय आदि सर्वत्र इसका प्रसार है। आजकल जीवनयापन का आवश्यक अंग भ्रष्टाचार ही हो गया है। इस विकट समस्या से मुक्ति के लिए शिक्षा के द्वारा तथा धर्म का प्रायोगिक प्रचार करके आत्मसंयम की मानसिकता पैदा करना सबकी जिम्मेदारी है। दण्ड का भय प्रत्येक स्तर पैदा करना शासन की जिम्मेदारी है। शासन पर अंकुश लगाने के लिए पुराने समय के ब्राह्मणों की तरह निर्भीक, निःस्वार्थी, परोपकारी चिन्तकों तथा पुरानी व्यवस्था के क्षत्रियों की तरह बलिदानी एवं स्वाभिमानी सामाजिक कार्यकतात्रओं की आवश्यकता है। कहीं न कहीं सत्य का दीप जलेगा तभी वर्तमान भ्रष्टाचार का निविड़तम समाप्त होगा।

[71]
विद्वानों का स्वार्थ त्याग

अपनी प्राचीन साहित्यिक सम्पत्ति पर हमें गर्व एवं आश्चर्य दोनों की अनुभूति होती है। विद्वान् साहित्यकारों ने अपने नाम को अमर करने की परवाह न करके ज्ञान और सिद्धान्त को प्रचारित करने के लिए अपनी कृतियों को बाल्मीकि, व्यास, शंकराचार्य जैसे प्रसिद्ध लोगों के नाम से प्रकाशित किया। योग वासिष्ठ, भागवत तथा अन्य अनेक पुराण, महाभारत का नब्बे प्रतिशत अंश, शंकराचार्य के नाम पर अनेक रचनाएँ आदि निश्चित रूप से अन्य विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं। इनमें भी महत्वपूर्ण ज्ञानराशि है।

ऐतिहासिक तथ्यों से माना जाता है कि व्यास ने आठ हजार श्लोकों में जयकाव्य लिखा था। बाद में विद्वानों ने जोड़कर पच्चीश हजार श्लोकों के भारतकाव्य के रूप में बना दिया। इसी क्रम में बढ़ते हुए भारत ही महाभारत के रूप में परिणत हुआ जिसमें

सवा लाख श्लोक थे। यह क्रिया ईसापूर्व पाँचवीं शदी में पूरी हो चुकी थी। अब तो लगभग एक लाख चालीस हजार श्लोक उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर, भगवद्गीता के अठारह अध्याय में सात सौ श्लोकों में प्रक्षिप्तांश पर जिज्ञासा स्वाभाविक है। इस स्वरूप में आचार्य शंकर के बहुत पहले गीता का उपलब्ध होना स्वीकार करना पड़ेगा। गीता को एक पूर्ण धर्मशास्त्र बनाने का काम आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व सम्पन्न हो गया था। इसमे भी प्रक्षेप ही अधिक है। इस शास्त्र का आरम्भ अर्जुन को युद्ध करने को प्रेरित के लिए हुआ है। अपनी ओजस्वी वाणी, तर्क, लोक-परलोक का भय, स्वधर्म का महत्व तथा कर्मयोग के सिद्धान्त के द्वारा स्ववश करने में कृष्ण समर्थ थे। अतः चौथे अध्याय के अन्त अर्जुन को आदेशित किया–

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।।

यहाँ कृष्णार्जुन संवाद का प्रयोजन पूर्ण हो गया है। इसके बाद के प्रश्नोत्तर ज्ञानवर्धक हैं। इस पूरे संवाद के लिए तथा ग्यारहवें अध्याय के विराटरूप के दर्शन को मिलाकर तीन-चार घंटे का समय चाहिए जो युद्ध के आरंभ हो जाने पर तर्कसंगत नहीं है। इसके अलावा अठारहवें अध्याय का अन्तिम अंश संवाद के अवसर के सर्वथा अननुरूप है। इससे प्रक्षेप होना स्पष्ट है।

जो भी हो सम्पूर्ण गीता एक अद्भुत ग्रन्थ है। विद्वन्मनोरंजन के लिए तथा अपने देश में निःस्वार्थ विचारकों और लेखकों की परम्परा का महत्व बताने के लिए यह प्रयास है।

[72]
ईश्वरीय विधान

संसार की निःसारता का अनुभव सबको कभी न कभी होता है। अपने मित्र की आकस्मिक मृत्यु को देखकर लूथर को वैराग्य हुआ था। वही प्रोटेस्टेन्ट धर्म के प्रवर्तक हुए। गौतमबुद्ध का भी इसी तरह रहा। घर छोड़कर चले जाने, समाधि लेने, कुछ अनुभूति करके धर्म प्रवर्तन करने आदि से भी निःसारता की स्थाई अनुभूति नहीं होती है। यह व्यक्तिगत साधना है। प्रचार द्वारा इसे सार्वजनिक नहीं किया जा सकता है, बल्कि पुनः बन्धन का भय उपस्थित हो जाता है। महर्षि रमण की जीवनी यह सन्देश देती है कि प्रचार द्वारा अपनी तरह का आत्मनिष्ठ नहीं बनाया जा सकता है। प्रचार के प्रपंच में पड़ने पर पुनः संसार का प्रपंच घेर लेता है। अतः संसार की निःसारता को समझने का स्थाई उपाय अविद्या से मुक्ति ही है। यही शास्त्रसम्मत है। मृत्यु का भय रागद्वेष के रहने तक नहीं समाप्त होता है। अहंकार के रहते रागद्वेष तथा अविद्या के रहते अहंकार की समाप्ति असंभव है। योगशास्त्र मे लिखा है किअविद्याअस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। अगले सूत्र में–अविद्या मूलमुत्तरेषाम्। अन्य अनेक शास्त्र प्रमाण हैं। इस अविद्या से छुटकारा पाने के लिए सदाचार तथा निष्काम कर्मयोग के द्वारा चित्तशुद्धि प्रथम कर्तव्य है। तदुपरांत

अकर्म का मार्ग ही श्रेयस्कर है। संसृति के लिए कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग दोनों रहेंगे। यह ईश्वरीय विधान है।

[73]
आध्यात्मिक साधना

आध्यात्मिक साधना में ज्ञान और वैराग्य को पथिक के लिए नेत्र या दो पैरों की तरह बताया गया है। यह दोनों एक दूसरे के उपकारक हैं। ज्ञान के बिना वैराग्य मूर्खता कही जाती है और वैराग्य के बिना ज्ञान उपहासास्पद हो जाता है। सांसारिक पदार्थों से रागद्वेष का अभाव वैराग्य है तथा जीव, जगत, आत्मतत्व, ईश्वर, ब्रह्म, बन्धनमोक्ष का ज्ञान वास्तविक ज्ञान है। मोक्षेधीर्ज्ञानम् अन्यत्र विज्ञानम्। यह निरुक्ति ज्ञान को परिभाषित करती है।

वैराग्य होने के लिए सामान्यतया तीन कारण होते हैं। प्रथमतः किसी घटना (जो अपने ऊपर हो या दूसरे के) से आकस्मिक वैराग्य उत्पन्न होता है। गौतमबुद्ध जैसे लोग वैराग्य में कुछ काल तक टिकने वाले भी होते हैं। दूसरी तरह का वैराग्य ज्ञान से उत्पन्न होता है। पूर्वजन्म में साधना द्वारा चित्तशुद्धि के स्तर तक पहुँचे साधकों को ज्ञानसाधना में जाने की इच्छा होने पर ऐसा वैराग्य होता है। शुकदेव, शंकरचार्य आदि इस श्रेणी में हैं। तृतीय कोटि का वैराग्य सर्वजन सुलभ तथा विश्वसनीय है। यह कर्ममार्ग और सदाचारपूर्वक शास्त्रसम्मत विधि से स्वधर्मपालन तथा निष्काम कर्मयोग से उत्पन्न होता है। अनेकजन्मसंसिद्धिः ततो याति परां गतिम्–की शिक्षा में विश्वास करने पर यह सिद्ध होता है। यह निरापद मार्ग है जो चित्तशुद्धि और ज्ञाननिष्ठा तक पहुँचाता है। असंख्य महापुरष इसी मार्ग से चलकर सिद्धि प्राप्त किये हैं। इस मार्ग पर पदार्पण सदाचार से होता है। अतः कहा है–आचारः परमोधर्मः।

[74]
आचार-व्यवहार

आचार को धर्म का आधार माना जाता है। व्यक्तिगत जीवनयापन की विधा को आचार कहते हैं। समाज में आदान-प्रदान के कार्य व्यवहार कहे जाते हैं। अचार के अनुसार ही व्यवहार बनता है। जीवन के उद्देश्य के अनुसार आचार होता है। सात्विक, राजस या तामस या आसुरी एवं दैवी प्रकृतियों के रूप में भेद होने के कारण आचार में भी अन्तर होता है। यही भेद साम्प्रदायिक भेद का रूप लेता है। लेकिन एक तत्व ऐसा है जो सर्वजनीन है। वह यह है कि सभी आदमी सुखी रहना चाहता है। इसके कारण वह समाज में आचार-व्यवहार सही रखने के लिए मजबूर होता है। अनुचित करने पर उसे राजदण्ड से दुखी होना पड़ेगा या अस्वस्थ होकर कालकवलित हो जायेगा। अतः सुख भोग के लिए भी आचार की आवश्यकता है। चार्वाक लोग या इपिक्यूरिन दर्शन से प्रभावित लोग भी कुछ आचार के नियमों में बँधे होते हैं। सभी सम्प्रदायों में इसे प्राथमिकता दी जाती है।

हमारी संस्कृति में आचार को बहुत महत्व दिया जाता है। जीवन के मूल्यों के सात्विक होने के कारण यहाँ सात्विक आचार की शिक्षा दी जाती है। ऐसा सर्वत्र नहीं मिलेगा। अतः मनु भगवान ने लिखा है–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाषादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

अपनी संस्कृति का पक्षपात नहीं मानवमात्र के कल्याण के लिए आर्य संस्कृति के प्रचार की बात कही गयी है। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। यही हमारी लोकभावना है। इस समय अपनी संस्कृति को स्वयं छोड़ रहे हैं तो दूसरों को उपदेश देने योग्य नहीं हैं। हम अपने आचार-विचार को पुनः स्थापित करें तभी विश्वगुरु हो सकते हैं। शास्त्र और सत्पुरुषों के आचरण से आचार की शिक्षा मिलती है। इनमें श्रद्धा की आवश्यकता है। शिक्षा में क्रान्ति से इसे स्थापित करना है।

[75]
समस्याओं पर अंकुश

समस्त विश्व आशंकाओं और समस्याओं से ग्रस्त दिखाई पड़ता है। अस्तित्व की समस्या का अनुभव सब कर रहे हैं। फिर भी अपने क्रियाकलापों में सुधार कोई नहीं कर रहा है। इस स्थिति में सुधार ईश्वर की कृपा से ही होगा। अपने देश में समाज और शासन के सामने अनेक भयावह एवं जटिल समसयाएँ हैं जिनके विषय में कुछ करना हम लोगों के लिए संभव है। जिस समस्या पर विचार किया जाता है वही सबसे बड़ी लगती है। अधिकांश समस्याएँ राजकीय प्रयास से ही दूर होने योग्य हैं। बेरोजगारी से स्थिति बदतर होती जा रही है। अपराध, निठल्लों की राजनीति, हीनवृत्ति के कारण दुराचरण आदि अनेक दोष इसी से व्याप्त हैं। इस विषय में ग्राम स्तर पर छोटे-छोटे रोजगार पैदा करना कारगर उपाय है। दूसरा उपाय भी महत्वपूर्ण है। राजकीय सेवाओं का स्वरूप बदलकर, कम वेतनमान में नौकरियाँ दो-तीन गुना बढ़ाई जा सकती हैं। अधिक वेतन देने पर भी लोग भरपूर भ्रष्टातार कर रहे हैं। सांसद, एम.एल.ए. आदि के लिये यही बात लागू होगी। सबका जीवनस्तर लगभग समान रखने में भी इसमें सफलता मिलेगी। कार्यकुशलता, उत्पादन, अपराधी वृत्ति आदि रोकने में इससे मदद मिलेगी। इसी के साथ जनसंख्या वृद्धि रोकने से बहुत सी समस्याओं का समाधान हो सकता है।

उपभोक्तावादी संस्कृति विदेशी है। अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करना हमारी संस्कृति है। इससे स्वदेशी की भावना का पोषण भी होता है। इस सिद्धान्त को स्थापित करना संस्कृति एवं वर्तमान समस्याओं के विषय में हितकर होगा।

[76]
मानसिक गरीबी का निवारण

गरीबी और अमीरी वस्तुनिष्ठ स्थिति के बोधक शब्द नहीं हैं। इनका आकलन तुलनात्मक ढंग से होता है। अमेरिका का एक गरीब आदमी जो सरकारी सहायता के सहारे रहता है भारत में आकर अमीर जैसा रहता है। वास्तव में एकदम गरीब कोई नहीं

है। दूसरों से तुलना करके व्यक्ति गरीब बन जाता है। अतः बुद्धिमान लोगों के लिए गरीबी से बचने का उपाय आसान और स्ववश है। सामान्य प्रयास से जो सुलभ हो जाय उसी में सन्तुष्ट रहने वाला कभी गरीब नहीं रहता है। मलूकदास के सबके दाता राम, की बात यहाँ नहीं बताई जा रही है। लोक व्यवहार में स्वधर्म का पालन तो करते रहना पड़ेगा। अन्यथा गरीबी के साथ ही पापिष्ट भी बनना पड़ेगा। शीघ्र अमीर बनने के लिए अनीति का सहारा लेने वाले तो पापिष्ट ही रहेंगे।

गरीबी का बोध एक मानसिक स्थिति है। इसीलिए कहा है–मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः। इस तरह गरीब-अमीर का भेद समाप्त हो जाता है। श्रीसूक्त में ऋषि ने कामना किया है–तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा या च वाह्या अलक्ष्मी। अर्थात् बाहरी और आन्तरिक दोनों तरह की दरिद्रता को हटाने की कामना करनी चाहिए। स्वधर्म के साथ संतोष का सेवन किया जाय, जिससे बाहरी गरीबी दूर होगी। बुद्धिबल के सहारे मानसिक गरीबी को समाप्त करना जीवन की उच्चस्तरीय साधना है। इसके द्वारा अनन्तकोष की प्राप्ति होती है। समाज को सुखी रखने के लिए कुछ प्रबुद्ध लोगों द्वारा इस तरह की साधना होती रहे, यह शुभ लक्षण होगा।

[77]
न्याय का सम्मान

राम जन्मभूमि के विषय में उच्चतम न्यायालय का निर्णय देखा। देश के विभिन्न भागों में तथा शासन स्तर पर निर्णय के विषय में प्रतिक्रिया का कुछ ज्ञान अखबार तथा सामान्य लोगों से प्राप्त हुआ। इस प्रकरण पर विचार करने पर बड़ा सन्तोष प्राप्त हुआ। संतोष का कारण मुख्य रूप से यह है कि न्याय की प्रतिष्ठा होने पर लगभग सबी लोगों से ऐक्यमत्य रहा। भारत का नाम हिन्दुस्तान (इण्डिया) भी है। हिन्दुओं का मुख्य देश यही है। हिन्दू शब्द किसी धर्म या सम्प्रदाय का बोधक नहीं है। यह एक अमूल्य गुणों से अनुप्राणित प्राचीन संस्कृति का बोधक है। इस देश में सनातनी, आर्यसमाजी, शाक्त, शैव, बौद्ध, जैन, सिख आदि के अलावा मुसलमान, पारसी तथा इसाई भी हिन्दू संस्कृति से प्रभावित हैं। इस निर्णय के प्रति स्फुट या मौन समर्थन सर्वत्र रहा जिससे देश का हिन्दुस्तान नाम सार्थक हो गया। देश का विभाजन हिन्दू और अरबी संस्कृतियों के आधार पर हुआ था जो अपने को हिन्दू नहीं मानते थे वे पाकिस्तान चले गये। वहाँ से हिन्दू यहाँ आये। अब इस देश में रहने वाला समझदार मुसलमान, चाहे संप्रदाय अलग हो, अपने को हिन्दू से भिन्न नहीं मानता है। भिन्न मानने वाला कुटिल राजनीति से ग्रस्त होगा। हिन्दुत्व का समर्थन करके ही वे भारतीय कहे जाएँगे। सभी प्रबुद्ध मुसलमानों द्वारा समर्थित होने के कारण संदर्भित निर्णय इन बातों को प्रमाणित करता है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्थान भारतीय संस्कृति में मिल चुका है। उनके विषय में न्यायालय से लेकर जनमानस तक एकमत होना हिन्दू संस्कृति की प्रतिष्ठा है। देश की अखण्डता के लिए यह शुभ लक्षण है।

[78]
संगठन से लाभ और हानि

व्यक्ति कोई निर्णय श्रद्धा या विचार के आधार पर लेता है। श्रद्धा में मन की प्रधानता होती है, विचार में बुद्धि की। परिणाम के शुभ होने या स्पष्टतः अशुभ और अतार्किक न होने पर श्रद्धा से उत्पन्न निर्णय आदरणीय होते हैं। बहुत सी धार्मिक एवं सांस्कृति मान्यताएँ इसी कोटि की होती हैं। इनको तर्क और विज्ञान से परखना अनुचित है। ऐसे विषयों में संघ भी बन जाते हैं। इस तरह से संघ की सदस्यता लेना मानव स्वभाव है। यदि मानवता का हनन नहीं हो रहा हो तो इन संस्थाओं का आदर होना चाहिए। धर्म एवं संप्रदाय का विवोध करके आधुनिक बनना निन्दनीय है। विचार और तर्क के द्वारा लिए गए निर्णय व्यक्ति की योग्यता के परिचायक होते हैं। किसी वाद, दल, संघ, संस्था आदि की सदस्यता लेने में सतर्कता आवश्यक है। सदस्य होने पर उसके दोषों को भी स्वीकार करना पड़ता है। तब स्वतंत्र चिन्तन असंभव हो जाता है। बहुधा बड़े-बड़े चिन्तक इसके शिकार हो जाते हैं जिसमे व्यक्तिवाद का पता चलने लगता है। इसीलिए बुद्धिमान व्यक्ति अकेले चलना पसन्द करता है। पक्षपात, अन्याय, असत्य, अधर्म आदि का विरोध करने के लिए स्वतंत्र रहना प्रथम आवश्यकता है। लोभ और भय का त्याग भी समानरूप से जरूरी है। इन गुणों के अभाव में आज का समाजसेवी ही उसका शत्रु हो गया है। स्वतंत्र चिन्तन करने पर योग्यता की प्रतिष्ठा होगी। लोभी लोग संघ बनाते हैं, निर्लोभ व न्यायप्रिय लोगों का संघ गुणों के आधार पर स्वतः बनता है। अकेले चलने वाले को भी साथियों की कमी नहीं रहती है। सन्मार्ग पर पदार्पण अकेले होता है।

[79]
निरापद साधना

विविध प्रकार के गंभीर साधकों और विचारकों में भी मतवैभिन्य इस सृष्टि की अकल्पनीय विशेषता है। इसके तर्कसंगत दो कारण हैं–रुचि (साध्य व साधन) में विचित्रता तथा योग्यता (अन्तर्दृष्टि) में अन्तर। रुचि की विचित्रता पूर्वजन्मों के संस्कारों पर आधारित होती है। इनसे मन की कल्पना और इच्छा की शक्ति प्रभावित होती है। इसमें परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है। इसी के प्रभाव से शास्त्राण्यधीत्यपि भवन्ति मूर्खाः की सत्यता है। योग्यता के लिए बाह्यकरण तथा अन्तःकरण साधनभूत हैं। पूर्वजन्मों का प्रभाव इन पर भी होता है। आसन, प्राणायाम आदि से बाह्यकरण तथा त्रिविध तप और सत्संग से मनस्विता एवं बुद्ध की निर्मलता इस जन्म में भी साध्य है। इससे शास्त्र का सही तात्पर्य समझ में आता है तथा तद्नुसार क्रियाकलाप होते हैं। साधना के मार्ग पर किस पड़ाव से और मन्द या तीव्र किस गति से साधक चलता है, इस पर परम सिद्धि निर्भर करती है।

योग्यता बढ़ाना ही मुख्य साधना है। बहुमान्य उक्ति है–नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसां अर्णव इव। यह निर्णय तभी सिद्ध माना जायेगा जब सभी साधकों का परम लक्ष्य एक हो

जाय। ऐसा है नहीं। लेकिन साधना के पथ पर जन्म जन्मांतर चलते रहने पर यह संभव है। यह लक्ष्य अद्वैत ही हो सकता है। लेशमात्र द्वैत में भी भय बना रहता है। मण्डन मिश्र, मधुसूदन सरस्वती जैसे साधक एक ही जन्म में द्वैत से अद्वैत तक पहुँच गये। मतवैभिन्य इस अवस्था में समाप्त हो जाता है। अद्वैत का मार्ग निरापद है। गौड़ापादाचार्य ने इस अभय मार्ग में भय देखने वालों को अनेक प्रकार से समझाया है। साधना की पूर्णता सन्निकट आने पर सभी साधक अद्वैत की अनुभूति करते हैं। सही कहा है कि जल समुद्र में पहुँच कर ही स्थिर होता है।

[80]
बौद्धिक शक्ति का सदुपयोग

देश, समाज, संस्कृति, शासन, राजनीति, न्याय व्यवस्था आदि के विषय में चिन्तन करने की क्षमता कम लोगों में है। जो निष्पक्ष चिन्तन करते हैं वे असन्तुष्ट और चिन्तित हैं। ऐसे लोगों की संख्या भी देश में करोड़ों में है। लेकिन चिन्ता का विषय यह है कि समझदार और सदाचारी लोग इस दिशा में अपना कोई सक्रिय योगदान देने का दायित्व नहीं समझते हैं। वे उदासीन हैं या पराजित समझते हैं। जैसे हमारे यहाँ की युवा शक्ति का कोई लाभ नहीं मिल रहा है उसी तरह प्रबुद्ध लोग भी अनुपयोगी हो गये हैं।

इस शक्तियों का सदुपयोग देश के लिए आवश्यक है। प्रबुद्ध लोग निर्भय होकर सक्रिय हो जायँ, तो उनकी शक्ति, शसक्त दिखाई पड़ने वालों की अपेक्षा बहुत अधिक होगी। विभिन्न माध्यमों से तथा उचित अवसरों पर सामान्य जनता तथा सरकार को अपनी सम्मति तथा विरोध प्रकट करने से ही बहुत बड़ा परिवर्तन संभव है। यह उनका स्वधर्म है तथा न करना कर्तव्यच्युति है। ऐसा करना आरंभ होने पर न्याय और व्यवस्था के इच्छुक लोगों का एक विशाल संगठन अपने आप तैयार हो जायेगा।

[81]
वैदिक जीवन साधना

कष्टों और समस्याओं से मुक्ति की कामना और प्रयास सभी करते हैं। बन्धन का न रहना मुक्ति है। बन्धन अनेक तरह के हैं। रोग, कर्ज, गरीबी, कुसंग, भय, पराजय, व्यसन, मानहानि, वियोग, मृत्यु आदि के रूप में बन्धन समय-समय पर, एक न एक सबको मिलते हैं। अतः संसार का पर्याय बन्धन है। नरसी भगत की पत्नी मरी तो पुत्र साथ में था। पुत्र भी मर गया तो उन्होंने ईश्वर की कृपा मानते हुए कहा कि अन्तिम बन्धन की कील भी निकल गई। इस तरह कोई पुत्र को बन्धन मान सकता है। वास्तव में आसक्ति ही बन्धन है जिसके न होने पर संसार के सारे बन्धन समाप्त हो जाते हैं। अनासक्त होने पर कामनाएँ तथा उससे उत्पन्न होने वाला क्रोध सब नियंत्रित हो जाते हैं। इसी से वैदिक कर्मयोग सिद्ध होता है जिससे संसारी कष्टों से मुक्ति मिलती है।

इसके बाद दूसरी तरह का बंधन, परलोक, नरक, पुनर्जन्म आदि भवचक्र के रूप में दिखाई पड़ता है। वह मृत्यु के बाद का भय है। इस भय का निवारण भी इसी जीवन में

करना पड़ता है। कर्मयोग की सिद्धि से संसार का भय दूर करके ज्ञाननिष्ठा द्वारा परलोक का भय समाप्त किया जाता है। इसके बिना यह जीवन सार्थक नहीं कहा जाता है। अतः श्रुतिवाक्य है–इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदवेदीन्मती विनष्टिः। पूर्णरूपेण मुक्ति की कामना की पूर्ति आत्मज्ञान से ही संभव है। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।–यह उपनिषद् मंत्र यही बताता है। सा विद्या या विमुक्तये–कहकर विद्या की परिभाषा बता दी गई है। संक्षेप में यही वेदविहित जीवनसाधना है।

[82]
राजनीति का प्राण - नैतिकता

राजनीति में कुछ भी संभव है। यह मान्यता अवसरवादी और भ्रष्ट लोगों की है। वे सत्ता के लिए देश बेंच सकते हैं तथा अराजकता का भी समर्थन करते हैं। वास्तव में राजनीति मानव मूल्यों से रहित नहीं है। सम्बन्ध, उपकार, मित्रता, कृतज्ञता आदि का पालन करने के लिए स्वस्थ राजनीति में भी बाध्यता है। समझौता करना, शरणागत होना आदि राजनीति के अंग पहले से मान्य हैं। भोगविलास के लिए नहीं बल्कि धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा के लिए यह नीति थी। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

इन्द्र ने वृत्रासुर को छल से मारा। इससे उत्पन्न पाप का प्रायश्चित बड़ी कठिनाई से भोगा। इसका उद्देश्य दैवी संस्कृति की रक्षा करना था। कृष्ण काल यवन से युद्ध के समय भाग गये किन्तु इसी नीति से उसे मार डाले। खर से युद्ध के समय राम तीन कदम पीछे हटे। थोड़ी सी सामयिक पराजय सहकर खर को मारने में वे सफल हुए। युद्ध जीतने के लिए मानव मूल्यों के हनन को बचाकर अन्य सभी उपाय नैतिक कहे जा सकते हैं। दूसरा पक्ष भी महत्वपूर्ण है। कर्ण ने कृष्ण के समझाने पर भी दुर्योधन की मित्रता का त्याग और राज्य का लोभ नहीं किया। भरत ने माता के छल द्वारा मिले हुए राज्य को स्वीकार नहीं किया। यह लोग प्रशंसनीय हैं। विभीषण ने सीताहरण की घटना पर नहीं बल्कि हनुमान जी और राम का पराक्रम देखने के बाद युद्ध के समय भाई को छोड़ा। यह निन्दनीय नीति है। आज की राजनीति में सत्ता के लिए जोड़तोड़ करना निन्दनीय नहीं है किन्तु मर्यादाहीन नग्नता का प्रदर्शन बुरा है। आरक्षण, संरक्षण, तुष्टीकरण आदि के द्वारा सत्य, न्याय, मानव की गरिमा जैसे मूल्यों का हनन करके सत्ता लेना अनीति है। राजनीति को निरंकुश और मर्यादाहीन मानने वालों ने इसमें सब संभव कहना आरंभ कर दिया है। भरत की तरह कहने वालों की आवश्यकता है। राज्य का लोभ छड़कर उन्होंने भारतीय राजनीति बताया है–चाहिय धरमशील नरनाहू। मोहि राज हठि देइहँउ जबहीं, रसा रसातल जैहैं तबहीं।।

[83]
व्यक्ति की गरिमा

जिस देश में व्यक्ति की गरिमा को राजसत्ता द्वारा सुरक्षित रखा जाता है वहाँ नागरिकों मे मनोबल एवं स्वाभिमान होता है। अपने यहाँ इस दिशा में ध्यान देना चाहिए।

जनता और चुनाव लड़ने वाले माननीय लोग ही नहीं, पुलिस प्रसासन यथा समस्त राजकीय कर्मचारी भी यथायोग्य सम्मान के पात्र हैं। व्यक्ति और पद की प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाकर, अन्य लोगों को भ्रष्ट कहकर, अपनी छवि बनाने वाले राजनेता स्वयं को भ्रष्ट सिद्ध करते हैं। भ्रष्टाचार में भरसक सभी लिप्त हैं। वोट के लिए झाड़ू लगाना, पैर धोना, चाहे जहाँ भोजन करना, घडियाली आँसू बहाना आदि नेताओं के लिए आवश्यक है। इन कार्यों के लिए अधिकारियों को मजबूर करना, उनके पद एवं व्यक्तित्व के लिए अनुचित व असम्मानजनक है। मंत्री का पद कार्यपालिका और विधायिका दोनों में उभयनिष्ठ है। वह जनता में चाहे जैसा रहे। शुद्ध राजकीय पद की अलग गरिमा है। इकाबल के न रहने पर कर्मचारी प्रभावहीन हो जाता है तथा अपने को अदण्य समझने पर निरंकुश होता है। संतुलन आवश्यक है। राष्ट्रपति, जज जैसे उच्च पदस्थ से लेकर चपरासी तक अपने पद के अनुसार प्रतिष्ठा के पात्र हैं। पद के अनुसार योग्यता होने पर ही यह संभव है।

अपनी गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए दूसरे का ध्यान देना सही नीति है। परस्पर आदर भाव होना चाहिए। औचित्य के ज्ञान के लिए नैतिकता और ईमानदारी की आवश्यकता है। हमारी शिक्षा, लोकनीति एवं राजनीति में यह उद्देश्य प्राथमिक है।

[84]
वेद में एकतत्व की प्रतिष्ठा

ऋग्वेद में मूलतत्व को समझाने के लिए स्पष्ट रूप से कहा है–एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। अर्थात् उस उपास्य एकतत्व को ही ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार से समझाया है। अपनी योग्यता तथा रुचि के अनुकूल होने पर विषय विवेचन समझ में आता है। अतः एक ही तत्व को भिन्न-भिन्न रूपों में समझाया गया है। विष्णु, शिव, इन्द्र, अदिति, भूमा, गणपति, आद्याशक्ति आदि रूपों का वर्णन एक ही प्रकार का मिलता है। अनन्त, व्यापक, सर्वशक्तिमान, सत्, चित्, आनन्द, सर्वग्य आदि की उपाधियों से जो भी तत्व समझाया जाता है वह एक ही है। वही ईश्वर है। किसी एक रूप को बड़ा तथा दूसरे को छोटा समझने वाले अपनी अल्पग्यता को प्रकाशित करते हैं। मंदिर में दर्शन करते समय आँख बन्द करके सबका ईश्वर एक रूप में हृदय में आभासित होता है। भेद श्रद्धाजन्य है। एकत्व का रहस्य समझने पर वैदिक सनातन धर्म, सबके लिए बोधगम्य होने के कारण, विश्व के सभी सम्प्रदायों से अधिक सरल और उपयोगी माना जायेगा।

[85]
योग्यता का आदर

कार्यक्षमता ही योग्यता के रूप में जानी जाती है। किसी कार्य को करने की क्षमता की पर्याप्तता को उस कार्य के परिप्रेक्ष्य में योग्यता कहा जाता है। कार्यविशेष के लिए क्षमता की मात्रा (योग्यता) पर विचार होना चाहिए, इसमें विवाद नहीं है। उच्चतम पद पर नियुक्ति के लिए कुछ न कुछ योग्यता सब में होती है किन्तु देश की गरिमा को विश्व में प्रदर्शित करने की क्षमता होने पर ही उसे योग्य माना जायेगा। बिना अस्त्र के सैनिक

नहीं लड़ सकता है। उसी तरह प्रशासक, डाक्टर, इंजीनियर, मंत्री, प्रोफेसर आदि के पदों पर नियुक्ति के समय उद्देश्य की पूर्ति होतु योग्यता को देखना प्राथमिक जिम्मेदारी है। ऐसा न करने पर उद्देश्य की पूर्ति असंभव है तथा भ्रष्टाचार का बीजारोपण होता है। आरक्षण की व्यवस्था से गलत परम्परा सुनियोजित ढंग से देशभर में दीर्घकाल से चली आ रही है। अतः प्रगति और विकास का प्रदर्शन भले हो वास्तव में यथास्थिति रखना भी संभव नहीं हो रहा है। तर्क और न्याय को तिलांजलि देने वाली इस व्यवस्था की निन्दा के लिए गर्हित शब्द भी अपर्याप्त है। अंग्रेजों की गुलामी का पूर्ण प्रभाव लगभग डेढ़ सौ वर्ष रहा। इसके बाद आरक्षण की व्यवस्था तथा सांस्कृतिक गुलामी आरम्भ हो गयी है जो स्वतंत्रता को बेमानी बना रही है। इसका भी समापन होने पर स्वतंत्रता का लाभ मिलेगा।

उपर्युक्त बातों को अधिकांश लोग समझ रहे हैं। दलगत नीति, पद-प्रतिष्ठा तथा अनेक प्रलोभनों से देश का हितसाधान गौण हो गया है। जहाँ तक गरीबों और दलितों के उद्धार की बात है उसे सब चाहते हैं। उनकी योग्यता की वृद्धि के लिए शिक्षा आदि पर व्यय करने का समर्थन सभी करते हैं। नियुक्ति में योग्यता को प्राथमिक महत्व देना ही पड़ेगा। इस समय कोई राजनैतिक दल इन बातों को एजेंडा में प्रमुख स्थान देना आरंभ करें तो लगभग तीस प्रतिशत मतदाता उसके पक्ष में स्वतः जाएँगे। सत्ता भी मिल सकती है, नहीं तो देश की नीतियों को प्रभावित करने की क्षमता अवश्य मिलेगी। प्रतीक्षा करते हुए बहुत समय बीत गया, अब तो लोगों को सही दिशा में कार्य आरंभ करना पड़ेगा। तथास्तु।।

[86]
धर्मज्ञान का उपाय

धर्म का चोंगा पहनकर राजनीति, मुकदमेबाजी, व्यवसाय, भ्रष्टाचार आदि में लिप्त प्रतिष्ठित लोगों का तिरस्कार समाज में होना चाहिए। वे उच्च पदों की गरिमा को गिरा रहे हैं। उनका सही रूप प्रकट कराया जाय। तुलसीदास के कलिवर्णन को पढ़कर धर्म का दोहन व वेद की बिक्री करने वालों का त्याग किया जाय।

इन धर्मगुरुओं के बिना भी भारतीय जनमानस में यह है कि कर्म का फल अवश्य मिलता है, पुनर्जन्म होता है, ईश्वर की सत्ता है जो कर्मफल भोगने को बाध्य करती है। इन बातों को बताने की आवश्यकता शायद ही होगी। आज के युग में इनमें विश्वास दृढ़ होना अवश्य कठिन है। रहस्यमय बातों में वैज्ञानिक प्रयोग की आशा मूर्खता है।

अपने प्राचीन शास्त्रों का आश्रय लेना निरापद है। मरणोत्तर जीवन न मानने पर अपने सारे धर्मशास्त्र, दर्शन एवं जीवन मूल्य व्यर्थ हैं। लेकिन अपनी संस्कृति असत्य के सहारे इतनी चिरायु नहीं हो सकती है। पाखंडी धर्मगुरुओं को देखकर अपनी संस्कृति पर शंका अनुचित है। लोक में जीवित अवस्था में यश या अपयश तथा मरने पर कीर्ति या अपकीर्ति के रूपों में जीवन प्रत्यक्ष है। इसी तरह वीतराग जीवनमुक्त लोग मरने पर विदेहमुक्त हो जाते हैं। विमुक्तश्च विमुच्यते। हमारा वैदिक ज्ञान मरणोत्तर जीवन के विषय में जो मान्यताएं देता है, उसके अनुसार कीर्ति और मुक्ति के साथ ही स्वर्ग, यमलोक,

साकेत आदिलोक, प्रेतयोनि, अर्धचेतन तथा जड़योनियों में पुनर्जन्म आदि होता है। इसे जानने का लाभ यही है कि सदाचार द्वारा लोक-परलोक सुखी बनायें। पाखंडियों के कारण शंका न करें। जानने पर भी शंका में रहने वाले का दोनों लोक नष्ट हो जाता है। नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः–गीता का वाक्य स्मरणीय है।

[87]
भारत मे राजनीति का भविषय

समाचार के साधनों का उपयोग करने पर गलत सूचनाएं मिलती हैं, न करने पर देश-दुनिया से अलग हो जाना पड़ता है। स्वभाव वश ,बिना कुछ जाने रहा नहीं जाता है। अतः,सबकुछ देख -जानकर, अपनी बुद्धि से सही बात का अनुमान करलेना ही एक उपाय है। यह कार्य वही कर सकता है जिसके पास बौद्धिक क्षमता हो और किसी दलगत व्यापार मे बिका न हो। जानकर चिंता भले हो, कुछ कर पाना बड़े साहस का काम है। भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरूप विचारणीय है। राजनैतिक दलों का वर्तमान आचरण शोचनीय है। सत्ता के लोभ में सभी दल सदोष दिखाई पड़ रहे हैं। पदप्रतिष्ठा के वितरण मे, तुष्टीकरण से अपूरणीय क्षति सभी खूब कर रहे हैं। सत्य और न्याय के मार्ग पर चलने मे अस्तित्व ही संकट मे आने का भय हो रहा है। अच्छे और स्थाई लाभ के लिए,तात्कालिक रक्षा हेतु, कुछ निन्दनीय कार्य करना क्षम्य माना जा सकता है,किन्तु उसके संशोधन की मंशा दिखाई पड़नी चाहिए। इस समय सत्तारूढ़ दल मे भी कई कमियां हैं लेकिन उसके कुछ कार्य नि सन्देह अच्छे हैं। विरोधी दलों के पास अच्छे बुरे का ज्ञान ही समाप्त है। केवल सत्ता का विरोध करते हुए वे निन्दनीय और देश के लिए घातक बन गए हैं। प्रमुख विरोधी दल संकटग्रस्त और संदेहास्पद होगया है। उसकी हालत सांप छदर की है। एक परिवार जिसमे कुछ भी गुण नहीं है,दल के गले मे अटक गया है। उस परिवार में पूर्वजन्म के योगभ्रष्ट ही पैदा हते हैं जो प्रधानमंत्री के अलावा अन्य तरीके से देशसेवा नहीं कर सकते हैं। अब उस दल का अन्त निश्चित हो चला है। हा.दल का विभाजन करके, नई भारतीय मानसिकता का दल बन सके तो एक सार्थक विरोधी दल बन सकता है। इसमें पहले के असंतुष्ट कई दल मिल सकते हैं। यह देश के हित मे होगा। सबल विरोधी दल होने पर,जाति,क्षेत्र और सम्प्रदाय के नाम पर चल रहे दलों का वजूद भी समाप्त होगा। राष्ट्र की सुरक्षा, गरिमा, स्वभिमान ,संस्कृति की रक्षा ,देश की अखण्डता जैसे विषयों पर विवाद उत्पन्न करने वालों को सरकार तथा जनता दोनों द्वारा दण्डित किया जाना आवश्यक है। इस तरीके से सत्ता लेने वाले देश को बर्बाद कर देंगे। आर्थिक, सामाजिक, व्यावहारिक, विकास तथा सुशासन आदि से सम्बद्ध विषयों पर स्वस्थ विरोध और सुझाव विरोधी पक्ष का कर्तव्य है। संविधान की दुहाई देनेवालों को उसके अनुच्छेद 51A को भी पढना चाहिए। इसमे नागरिकों के ग्यारह कर्तव्य बताए गए हैं। इसमें राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा भी एक है। कर्तव्य न करनेवाले का अधिकार समाप्त होना चाहिए। देश को बचाने के लिए जनता को पुनः सक्रिय होना परमावश्यक है।

[88]
भारत भूमाता

भारतमाता शब्द पहली बार बंगला साहित्यकार किरन चन्द्र बन्योपाध्याय के इसी नाम के नाटक मे.वर्ष 1873मे प्रयुक्त हुआ था। नाटक का बहुत मंचन हुआ। स्वतंत्रता

संग्राम में, भारत माता की जय का नारा संगठन और प्रेरणा का स्रोत बन गया था। राष्ट्रप्रेम के प्रदर्शन मे अब भी इसका प्रयोग होता है। भारत माता का मंदिर भी वाराणसी मे बनाया गया था। माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः, प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे – जैसे वेदवाक्यों से मातृभूमि के मानवीकरण की प्रेरणा मिली होगी।

भारत, देश और राष्ट्र पुलिंग शब्द हैं। इन्हें माता कहने पर इसका उद्देश्य और व्याकरणगत शुद्धि विचारणीय है। व्याकरण से सिद्ध करना विद्वानों का काम है। मध्यपदलोपी समास तो नहीं बनता है। विश्वामित्र का अर्थ विश्व के अमित्र के बजाय विश्व के मित्र बनानेवाले शब्दशास्त्री अब भी मिल सकते हैं। नहीं सिद्ध होने पर भी, सौ वर्ष से अधिक काल से प्रयोग मे आने के कारण इसे रूढार्थ मे स्वीकार किया जा सकता है। उद्देश्य का निर्धारण करना महत्वपूर्ण है। भारत एक भूमि का भागमात्र नहीं है। कभी यह बहुत विशाल देश था। ईरान,पाकिस्तान अफगानिस्तान,तिब्बत,नेपाल तथा पूर्वीद्वीप के अलावा लंका आदि दक्षिणी द्वीप भी भारत ही थे। इतिहास से यह अच्छीतरह जाना जा सकता है। पाकिस्तान तो हमारे सामने अलग हो गया। महाभारत काल मे यह विश्व का सबसे बड़ा देश था। अब काफी छोटा हो चला है। इसके बावजूद जनमानस मे भारत शब्द का अर्थ, अब भी वही है जो पहले था। वास्तव में यह एक भूभाग मात्र नहीं है। यह एक राष्ट्र एक संस्कृति की आधारभूमि,एक ज्ञानराशि का संरक्षक, विश्वगुरु एवं युगप्रवर्तक होने की क्षमता से गर्भित देवभूमि है। हमारे यहां वृद्ध पिता की सेवा और वृद्धमाता की सर्वविध सुरक्षा की शिक्षा दी जाती है। पुत्राः रक्षन्ति वार्धक्ये–मनुस्मृति का आदेश है। माता का आशीर्वाद अमोघ फलदायी होता है। मातृभूमि की विपन्नता के समय ,उसकी सेवा और उससे वरदान प्राप्त करने की याद समयानुकूल है। भारतमाता शब्द का अर्थ तो वही रहेगा.शब्द की दृष्टि से भारत भूमाता कहने पर किसी तरह का प्रश्न नहीं रह जाएगा। जो अभ्यस्त हो गये हैं उनके लिए अर्थ ही प्रधान रहना भी ठीक है।

[89]
वैदिक ज्ञान का लाभ

वैदिक ज्ञान और वद्धमूल सांस्कृतिक परम्परा की विशाल सम्पदा के होने पर भी हमारे भारत देश में इनका लाभ नहीं मिल रहा है। हम अपनी प्रतिभा को हेय समझ कर, अन्यत्र से नकल करने लगे हैं। यह निराशा क्यों? इसका कारण और निवारण का उपाय जानना एक उत्कंठा का विषय है। इस विषय में कुछ विचारणीय तथ्य यह हैं-

हमारी संस्कृति वर्णव्यवस्था की शुद्धता पर आधारित है। गीता के प्रथम अध्याय मे, आपस मे युद्ध होने पर कुल का नाश और वर्णसंकरत्व की आशंका बताई गई है। तथापि, युद्ध हुआ और वर्णव्यवस्था छिन्नभिन्न हुई। इस पर अंकुश लगाने के लिए जातिव्यवस्था की कल्पना की गई। सामाजिक व्यवस्था को ठीक करते समय ही राजनैतिक समस्या आगई। बौद्ध धर्म को राजकार्य मे भी अपनाने से आर्य संस्कृति का वर्चस्व समाप्त हो गया। बीचबीच मे उत्थान और पतन होते रहे। चाणक्य जैसे राजनीतिज्ञ और अनेक विचारक पैदा हुए। बौद्ध और मीमांसा शास्त्रों के विद्वान विवाद करते रहे । शदियों

बाद आचार्य शंकर ने विवाद को समाप्त करके दार्शनिक एवं सामाजिक व्यवस्था दिया जो बहुत काल तक चलती रही है। इस समय राजनैतिक पक्ष पर सम्यक विचार नहीं हुआ था जिससे कुछ काल के बाद देश और संस्कृति पर विदेशी आघात होने लगे।

अरबी और यूरोपीय शासकों और संस्कृतियों को रोकने का प्रयास छोड़कर हम अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए भक्तिमार्ग का आश्रय लेने लगे। यह राष्ट्र के हित मे नहीं रहा। कुछ काल बाद जागृति आने लगी। राजनेता और समाज सुधारक पैदा हुए। स्वामी दयानंद सरस्वती ने नई वैदिक और सामाजिक व्यवस्था दिया। देवता, पितर, मन्दिर, तीर्थ आदि के नकारने से यह व्यवस्था देश के अनुरूप नहीं रही। पाश्चात्य विद्वानों का वेदज्ञान भी इस देश मे स्वीकार्य नहीं रहा। स्वामी करपात्री आदि का प्रयास, इस बहु सांस्कृतिक युग मे काल की दृष्टि से अनुपयोगी हो गया। इस तरह, देशकाल के अनुरूप कोई व्यवस्था न होने के कारण वैदिक ज्ञान और संस्कृति का लाभ नहीं मिला। फलतः,अश्रद्धा होने लगी। इस ज्ञान को उपयोगी बनाने के प्रयास हो रहे हैं। बी एच यू मे वेद-विज्ञान के विविध आयमों पर अध्ययन आरंभ हुआ है। इससे बड़ी आशा की जा सकती है। आवश्यकता है कि हम अपने मूल को पकड़े रहें। सामाजिक संस्थाएं स्वदेशी मूल्यों और संस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास करती रहेंगी तो 'ऐहैं बहुरि बसंत ऋतु'सही सिद्ध होगा।

[90]
विद्यादान मे सतर्कता

धनदान, कन्यादान,अभयदान आदि अनेक प्रकार के सत्कर्म पुण्यप्रद बताए गए हैं। यह भी सुपात्र को देने पर ही प्रशंसनीय होते हैं। चोर को अभयदान देना बड़ा पाप है। यह सब दान अस्थायी प्रकृति के हैं। इनसे होने वाले लाभहानि भी अस्थायी होते हैं। सबसे स्थाई और मूल्यवान विद्यादान माना जाता है। इसमें बहुत सावधानी और संयम की आवश्यकता होती है। सुपात्र को खोजने में गुरु ही शिष्य से अधिक व्यग्र होता है।

कालिदास ने लिखा है कि कण्वऋषि ने शकुंतला को विदा करके कहा– सुपात्र दत्तेव विद्या अशोचनीयासि संवृत्ता। सुपात्र के अभाव मे हमारे यहां का अनेक प्रकार का वैदिकज्ञान लुप्त हो गया। राजा के प्रभाव मे आकर या लोभवश कुछ विदयाओं को ब्राह्मणों ने, सामान्य व्यक्ति को भी दिया था किन्तु कर्मकांड,धनुर्वेद व अध्यापन का महत्व जानते हुए ,इन्हें कहीं भी सार्वजनिक नहीं किया गया था। इस परम्परा पर आघात होने लगा तो शक्ति उत्पन्न करने वाले प्रयोगों का अध्यापन समाप्त हो गया। वे विद्याओं को लुप्त हो गई। पवित्र और निरापद वातावरण देने वाले क्षत्रियों के अभाव मे ऋषि परम्परा को पुनः स्थापित करना असंभव है।

विद्यादान की वर्तमान दुर्दशा भयावह है। योग्यता और पात्रता का कोई विचार नहीं रह गया है। समाज विज्ञान ,धर्मशास्त्र, चिकित्सा आदि मे अनर्गल हस्तक्षेप है ही,अण्वास्त्र जैसी नाशकारी विद्याओं की भी शिक्षा कोई ले सकता है। संस्कारहीन लोगों के विद्वान घोषित होजाने पर सामाजिक विघटन,राष्ट्रीयता का विरोध तथा देशद्रोह

करनेवाले भी महिमामंडित हो रहे हैं। ब्राह्मण स्वभाव का व्यक्ति विद्वान होकर पूरे समाज के हित की बात सोचता है। क्षत्रिय तथा वैश्य स्वभाव के विद्वान ब्राह्मण से स्पर्धा करने के कारण ,सीमित क्षेत्र का हितचिंतन करते हैं। शूद्र स्वभाव का व्यक्ति' भये यथा अहिः दूध पिलाये' को सार्थक करते हुए केवल अपने समुदाय को देखता है । वह सामाजिक विघटन का करण बन जाता है। व्यक्ति का दृष्टिकोण ही उसके वर्ण का ज्ञापक है। आवश्यकता है कि साक्षरता की शिक्षा सबको दीजाय किन्तु आगे, विशेषरूप से सुरक्षा और सामाजिक समरसता के चिन्तन मे, योग्यता के साथ ही संस्कार और स्वभाव की भी परख की जाय। विद्या से विवाद नहीं,वाद और व्यवस्था उत्पन्न होनी चाहिए।

[91]
जीवन की सार्थकता

कः इप्सितार्थे दृढनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत-कालिदास। 'मनस्वी मृयते कामं कार्पण्यं न हि गच्छति' – इन सब बातों को भूलकर ,कार्पण्य दोष से आक्रांत हो जाना जीवन्मृत्यु है। प्रतिदिन मरने से अच्छा है,स्वधर्म के पालन हेतु आत्माहुति देना। आत्माग्नि मे आत्माहुति को परम लक्ष्य बनाने वाले धन्य हैं। लघु नक्षत्र या सूर्य किसी तरह प्रकाशित होने मे जीवन की सार्थकता है। कुक्ष समझ मे न आने पर किसी महापुरुष का अनुसरण करना भी श्रेयस्कर है। जीवन एक अमूल्य हीरा है,इसे कीचड़ मे नहीं फेंकना है। चरैवेति,चरैवेति।।

[92]
कर्मत्याग के कारण

प्रत्येक व्यक्ति से किसी न किसी स्तर पर कर्म का त्याग होता है। इन स्तरों का सूक्ष्म विवरण यह है- उच्चतम कोटि के व्यक्ति का मन जन्म से ही कर्ममार्ग से विरत रहता है। लेशाविद्या के कारण जन्म लेकर भी शुकदेव,शंकराचार्य जैसे लोगों का कर्म सद्यः छूट जाता है। दूसरे कोटि के लोग पूर्वजन्म के संस्कार जाग्रत होने के कारण,जीवन के कुछ अनुभवों के आधार पर, कर्म से विरत हो जाते हैं। महावीर, गौतम बुद्ध, आदि बहुत से लोग इस कोटि मे हैं। कुछ लोग उत्साह समाप्त होने पर लौटते भी हैं। तृतीय कोटि के लोग शास्त्रीय विधि से धर्मपालन और उपासना को ईश्वरार्पण करके, चित्त की शुद्धि द्वारा निर्मल होने पर कर्म करते हुए भी असंग और अकर्ता होते हैं। चतुर्थ कोटि के लोग वे होते हैं जो संग,बहकावा,अधकचरा ज्ञान या तात्कालिक वैराग्य मे फंसकर कर्म छोड़ बैठते हैं। पांचवें कोटि के लोग भय, निराशा, शोक, वियोग आदि से विचलित होकर पलायन करते हैं। छठवें तरह के लोग वे हैं जो आलस्य, प्रमाद, असत्य मिथ्याचार आदि के सहारे विकर्म करते हैं या कर्मत्याग कर देते है। सातवें तरह के लोगों को शारीरक या मानसिक असमर्थता के कारण कर्मत्याग करना पड़ता है। वे यथासंभव कर्म करने का प्रयास करते है। आठवीं,अन्तिम स्थिति मृत्यु है जिसमें सब तरह के लोगों का कर्म स्वतः छूट जाता है। मृत्युः सर्वहरश्चाहम्-अर्थात मृत्यु सब सांसारिक प्रपंच

समाप्त करने में समर्थ है। इन आठ स्थितियों पर चिन्तन करने पर स्पष्ट है अन्य सभी स्थितियां परवश या निन्दनीय हैं। केवल तृतीय कोटि मे रहकर, स्वधर्म का पालन करना ही स्ववश और सही पुरुषार्थ है। कर्ममार्ग छोड़ना निन्दनीय है,स्वतः छूट जाना जीव की कृतकृत्यता है।

[93]
अधिकार की उत्पत्ति एवं सुरक्षा

अधिकार दो तरह से प्राप्त होता है। पहला प्रकृति-प्रदत्त अधिकार जो शक्ति पर आधारित होता है। असभ्य समाज में, शक्तिशाली ही समस्त अधिकारों से सम्पन्न होता था। अब भी बहुत अंश मे ऐसा ही है। दूसरे प्रकार से अधिकार सामाजीकरण और शासन की व्यवस्था के द्वारा प्राप्त होता है। प्रथम कोटि का अधिकार निरंकुश होता है जबकि द्वितीय कोटि के अधिकार के लिए कर्तव्यबोध तथा योग्यता होनी चाहिए। यह बात व्यक्ति, संगठन तथा देश सभी स्तरों पर लोगू होती है। शक्तिशाली लोगों तथा देशों की दादागिरी अब भी स्पष्ट है। सब को समानता देने का प्रयास भी शक्ति का दुरुपयोग और अदूरदर्शिता है। सब जगह स्वतंत्रता और समानता के अधिकार घातक हो रहे हैं। कर्तव्य के योग्य बनाकर अधिकारी बनाना ही उचित है। मानवाधिकार को भारत में भी यथावत प्रवर्तित करने का प्रयास पाश्चात्य देशों की कुटिल चाल है। यहां का जनसमुदाय अभी इस योग्य नहीं है। दलितोद्धार, नारी की स्वतंत्रता, वैवाहिक और यौनसंबंधों की स्वच्छंदता आदि से संबंधी नियमों के दवारा समानता का प्रयास भी इस समाज के लिए अनुपयुक्त हैं। पहले कर्तव्यबोध कराना ही आवश्यक है। सत्तापक्ष का अहंकार और विपक्ष की दिशाहीनता तथा सभी का सत्ता का मोह अपने देश मे भयावह स्वरूप ग्रहण कर रहे है। राष्ट्रीय आपदा के समय भी आपसी विरोध से देश सर्वनाश की ओर उन्मुख हो रहा है। इससे देश को बचाने के लिए उचित निर्णय लेकर उनका कार्यान्वयन, सख्ती के साथ करना तथा अयोग्य लोगों के अधिकार में कटौती करना तात्कालिक आवश्यकता है। दीर्घकालिक योजना मे, बालकों को नैतिक शिक्षा तथा अच्छे संस्कार देना हितकर होगा। शिक्षा की नीति का आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा।

[94]
वैश्विक महामारी से अमूल्य शिक्षाएं

आजकल कोरोना वायरस से बचने के लिए अनेक उपाय बताए जारहे हैं। विशेष बल स्वच्छता,सम्पर्क मे सावधानी,खानपान मे संयम व सतर्कता तथा तुलसी,अदरक, काली मिर्च आदि प्राकृतिक पदार्थो से अवरोधक क्षमता बढ़ाने पर दिया जा रहा है। सारे उपाय देखने पर लगता है कि मनुस्मृति के शौचाचार और सम्बन्धों के विषयक अध्याय पढ़ाये जा रहे हैं। संबंधों में समानता भी संक्रमण से बचाने के लिए आवश्यक है। मनुवाद की अनिवार्यता प्रमाणित होरही है। यह आकस्मिक आवश्यकता नहीं है। इसतरह की आपदाएं आती ही रहेंगी। अतः मनुस्मृति तो सदैव प्रासंगिक रहेगी। हम अब भी

विश्वगुरु होने के योग्य हैं। वर्तमान महामारी भौतिक तथा आध्यात्मिक, दोनों तरह की शिक्षाएं दे रही है। भौतिक पक्ष मे स्वच्छता,खानपान,सामाजिक सम्बंध आदि मे सतर्कता के साथ ही प्रकृति के तत्वों का संरक्षण आवश्यक है। अखाद्य आहार,अगम्य गमन आदि अनेक निषिद्ध कार्यों से विरति न होने पर नईनई महामारी पेदा होती रहेगी। इसके साथ ही उपभोक्तावादी संस्कृति का अनुकरण छोड़कर आवश्यकताओं पर संयम की भारतीय संस्कृति को वापस लाना पड़ेगा। इससे प्रकृति का निरंकुश दोहन और पर्यावरण का प्रदूषण कम होगा। पंचभूतों को कुपित करने पर सृष्टि समाप्त हो जायेगी।

आध्यात्मिक पक्ष में शिक्षा मिल रही है कि असत्य और पाखण्ड पर नियत्रण करना अत्यावश्यक है। चरक संहिता के जनपदोध्वंश प्रकरण में विस्तार से बताया गया है कि इन दुर्गुणों के उच्चस्तर तक व्याप्त हो जाने पर सूर्य एवं चन्द्र की करणे भी प्रदूषित हो जाती हैं । इससे महामारी आदि द्वारा सामूहिक मृत्यु होती है। हमारे यहां के लोग अपनी संस्कृति के शरण में चले जाय तो हमारे शास्त्र विश्वशांति का संदेश देकर हमे विश्वगुरुत्व पर आसीन कर सकते हैं।

[95]
कर्मवाद का व्यावहारिक लाभ

जैसा कर्म होगा वैसा ही फल मिलेगा एवं कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है, यह कर्मवाद का सिद्धांत है। वैदिक परम्परा मे कर्मवाद का विचार रहस्यात्मक ही नहीं बल्कि पूर्णरूप से व्यावहारिक तथा तार्किक दंग से किया गया है। वैसे किसी न किसी रूप में सर्वत्र यह सिद्धांत स्वीकार किया जाता है। पुनर्जन्म को न मानने पर यह मान्यता रहस्यात्मक ही रह जाती है जिससे बहुत लोगों को इसमें अविश्वास भी होता हैं। हमारे यहां शास्त्र तथा प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पुनर्जन्म की पुष्टि होती है। अतः इसे स्वीकार न करते हुए भी अधिकांश लोग इसी को उदाहृत करते हैं। संचित,प्रारब्ध और क्रियमाण के भेद से कर्म तीन स्थितियों में विभक्त होता है। बहुत प्रबल होने पर क्रियमाण ही प्रारम्भ हो जाता है ,अन्यथा प्रारब्ध का ही भोग करने को जीव बाध्य होता है। अपने ही कर्मो का फल मिलता है। दूसरा व्यक्ति प्रभावित नहीं कर सकता है। संक्षेप मे यही कर्म और भोग की ईश्वरीय व्यवस्था है। शाप और वरदान या आशीर्वाद से प्रभावित होने के कारण उपर्युक्त सिद्धांत में विचलन जैसा लगता है। यह भी कहा गया है-एकः करोति पापानि फलं भुंग्ते महाजनैः । अर्थात एक के पाप का परिणाम जनसमूह को भोगना पड़ता है। इन बातों से कर्मवाद क सिद्धांत अप्रभावित रहता है। शाप या आशीर्वाद पाने के लिए भी वैसा कर्म करना पड़ता है। किसी समय महापापात्मा को पैदा करने और प्रतिष्ठित करने वाले सभी लोग एक साथ दण्डित हो सकते हैं। इस तरह कर्मवाद का सिद्धांत अविचल है। अतः अपने कर्मो को ही भाग्यविधाता समझते हुए सदाचार तथा सत्कर्म,करना बुद्धिमानी है। दूसरे पर आरोप लगाकर दोषमुक्त होने का प्रयास पाप है। किसी को बुरे काम से रोकने का प्रयास पुण्य है । कर्मवाद को मार्गदर्शक मानकर जीवनयापन करना लोक तथा परलोक के लिए हितकर है।

[96]
शास्त्रज्ञान की सार्थकता

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः, यस्तु क्रियावान पुरुषः स विद्वान्-यह नीतिवाक्य शास्त्रज्ञों के लिए मार्गदर्शक है। आचरण में नहीं आने वाला ज्ञान व्यर्थ होता है। ज्ञान की उपयोगिता आत्मार्थ या जनहित मे होने मे ही उसकी सार्थकता है। देखा जाता है कि किसी घटना के हो जाने पर या किसी तथ्य के प्रायोगिक ढंग से सिद्ध होने के बाद,ज्योतिषशास्त्र या वेदपुराण मे उसको पूर्वप्रतिपादित बताने का प्रयास किया जाता है। इस प्रयास की कोई उपयोगिता नहीं है बल्कि कहनेवाला हास्यास्पद या स्वार्थी सिद्ध होता है। वेदों की ज्ञानराशि से नई खोज करना,ज्योतिष से पूर्व सूचना द्वारा रक्षा का उपाय करना या क्षतिपूर्ति का उपाय बताना वास्तविक शास्त्रज्ञता है। ब्राह्मणोचित तपस्या द्वारा वेदों की अपार ज्ञानराशि से, नई खोज करना वास्तविक वेदाध्ययन होगा। मृत्यु अवश्यंभावी है.यह सबसे प्रामाणिक भविष्यवाणी है। इस ज्ञान के आधार पर अल्पायु की मृत्यु से बचने के लिए आयुर्वेद आदि शास्त्र बने हैं जो सार्थक सिद्ध हो रहे हैं। इसी तरह योग आदि विभिन्न शास्त्रों को उपयोगी बनाना संभव है। शास्त्रज्ञान को अहंकार और प्रदर्शन का विषय बनाने के स्थान पर उसका विनियोग आत्महित और जनहित मे करना उचित है। आचार सम्पन्न होकर शास्त्राध्ययन करने पर ही यह संभव है। शास्त्रों से लाभ के लिए शास्त्रीय विधि का पालन अनिवार्य है।

[97]
वैदिक ज्ञान का उपयोग

वेद तथा तदाधारित साहित्य में निहित बहुत सी विद्याएं, योग्य शिष्य के अभाव मे लुप्त होगयी हैं। उन विद्याओं का अन्वेषण पुनः करने के लिए सुपात्र की आवश्यकता है। यह कार्य बालक के मातापिता के द्वारा आरंभ करने पर, समर्पित उद्येश्यवाले विद्यालयों द्वारा पूरा हो सकता है। बी एच यू में स्थापित वैदिक विज्ञान केन्द्र से यह आशा की जासकती है। वेदों में उपलब्ध सन्दर्भो से ज्ञात होता है कि भौतिक विज्ञान, आयुर्वेद,धनुर्वेद कृषि आदि सामाजिक आवश्यकता के समस्त विषय यानी चारों पुरुषार्थों (धर्मार्थकाम तथा मोक्ष) के सिद्धि की सामग्री उनमें है। सभी विषयों पर, शोध हेतु विषय निर्धारित करके ,उपयुक्त विद्यार्थियों को देना,उन्हें सभी तरह की सुविधा देना फलदायी होगा। प्रत्येक विभाग में एक या दो शोधछात्रों की पीठिका बनायी जा सकती है। मंत्रविज्ञान और यज्ञों के ऊपर कार्य विशेष सतर्कता से करने की व्यवस्था की जासकती है। राजकीय व्यवस्था के अलावा अन्य सम्पन्न तथा समर्पित व्यक्ति भी इस कार्य को करके सुयश का भागी हो सकता है। इस कार्य के लिए ऋषि कोटि के तपस्वियों की आवश्यकता है जिनको सुविधा और सुरक्षा राज्य से दी जाय। यजुर्वेद का अप्रतिहत सूक्त रुद्राष्टाध्यायी का तृतीय अध्याय है। इसके कुछ मंत्रों के पढ़ने पर लगता है कि हम अपनी शक्ति का उपयोग छोड़ने के कारण दुर्बल बने हैं। मंत्रशक्ति से ही राम ने खर तथा

उसकी चौदह सहस्त्र सेना को अकेले मारा था। अगस्त मुनि ने मंत्रगर्भित वाण देकर राम को अद्भुत कार्य करने मे समर्थ बनाया। राम मे उस अस्त्र को लेने की योग्यता थी। बृहस्पति इन्द्र को ही समर्थ बनाते हैं। वृहस्पते. परिदीया रथेन रक्षाहो मित्रानपबाधमानः, असौ या सेना मरुतः परेषां अभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना तांगूहततमसापनतेन ययाअमीअन्योअन्यत्र जानन्।। यह सब मंत्र शत्रुओं पर विजय के लिए सिद्ध करने के लिए हैं। ऐसे सहस्त्रों स्थल विभिन्न विषयों पर हैं। वेदों के ऊपर विश्वास करने पर ही इसमें उपलब्ध विज्ञान का लाभ लिया जा सकता है। वैदिक सिद्धांतों को आधुनिक विज्ञान कहीं भी नकार नहीं सका है। अतः पूर्ण विश्वास के साथ इस अभियान मे लगना अपने स्वाभिमान के अनुकूल है।

[98]
शक्ति की सार्थकता

पशुओं के समज मे सहस्त्रों गीदड़ मिलकर जंगल का राजा नहीं चुन सकते हैं। अपने पराक्रम से सिंह स्वयं राजा बनता है। वह निर्भय और स्वेच्छाचारी होता है। यह शक्ति का प्रकृतिक प्रयोग है। शक्ति का सिद्धांत.मनुष्य के समाज के विषय मे , प्रकृति के नियमों से समानता रखते हुए भी कुछ भिन्न है। मनुष्य को राजा बने रहने के लिए शक्ति के होने पर, न्याय,सहानुभूति आदि विवेकजन्य गुणों को स्वीकार करना पड़ता है। मनुष्य की बुद्धि का बल किसी को निरंकुश नहीं रहने देता है। ऐसा होने पर भी एक समय मे शासनसत्ता एक ही स्थान पर रखना जरूरी है, अन्यथा अराजकता होजाती है। कई लोग सत्ता पर नियंत्रण करने लगते हैं तो अशक्त सिद्ध हो रही वैधानिक सत्ता या शासन पद्धति का परिवर्तन या अवैधानिक हस्तक्षेप करनेवालों को दण्डित या नियंत्रित करना पड़ता है। अशक्त और अयोग्य के हाथ में शासनसत्ता अप्राकृतिक है तथा निरंकुश सत्ता अमानवीय है। यह सिद्धांत है। उपर्युःक्त परिप्रेक्ष्य मे,भारतीय राजनैतिक स्थिति पर विचार होना आवश्यक हो गया है। कई प्रकरणों में अराजकता की स्थिति देखी जाती है क्योंकि संविधान द्वारा स्थापित केन्द्र की आज्ञा की अवहेलना करने को राज्य उद्यत हैं। जाति और सम्प्रदाय से सम्बन्धित संगठन उग्र हो रहे हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शान्ति व्यवस्था के मामलों मे भी विरोध होते है। सबका हिन्दू होजाना जरूरी नहीं है किन्तु हिन्दुस्तानी बने रहने मे भी इतराज होना अनुचित है। भारतीय संस्कृति को समूल नष्ट करनेवाले प्रबल हो रहे हैं। इस तरह की अनेक समस्यायें स्पष्ट हैं। ऐसी दशा मे संविधान के परिवर्तन द्वारा कठोर शासन,शासन प्रणाली मे परिवर्तन,चीन की जैसी प्रणाली या प्रजातंत्र का कोई भारतीय स्वरूप खोजना,आदि विकल्प विचारणीय हैं। गुलाम मानसिकता और अशिक्षा के कारण तथा वर्तमान मे धनबल और बाहुबल के हाबी होने के कारण यहां का प्रजातंत्र उपहासास्पद है। अतःविकल्प ही विचारणीय है। राष्ट्रनायकों तथा देश प्रेमियों को इस दिशा मे विचार करना समय की आवाज़ है। सशक्त राष्ट्र ही कठोर निर्णय ले सकता है। विचार करते समय मूलभूत बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। देश की प्राचीन संस्कृति तथा देश की सीमा की सुरक्षा को प्राथमिकता अवश्य दीजाय।

[99]
धर्म का राजमार्ग

अपनी भाषा मे धर्म और नीति की बात लिखने में विश्वसनीयता पर शंका हो सकती है। साक्षात शास्त्र का अवलोकन आश्वस्त करनेवाला होता है। अतः आज, वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड के सौवें अध्याय के कुछ श्लोक लिखे जारहे हैं। इस अध्याय के छिहत्तर श्लोकों मे राम ने भरत को ,चित्रकूट में धर्मोपदेश किया है। समस्त अध्याय पठनीय है। तीन श्लोक भी प्रेरणादायी होंगे।

कच्चित् सहस्त्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम्।
पण्डितो अर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसो महत्।। - 22
सौ मूर्खों की अपेक्षा एक विद्वान् भला है।
विपत्ति से उद्धार विद्वान् ही कर सकता है।
कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थ धर्मेण वा पुनः।
उभौ वा प्रीतिलोभेन कामेन न विवाधसे।। -62

अर्थ के कारण धर्म को या धर्म के कारण अर्थ को वाधा न हो। धर्म और अर्थ दोनों को आसक्ति और लोभ से उत्पन्न होनेवाले काम के द्वारा हानि नहीं पहुंचे। त्रिवर्ग का सेवन यथायोग्य करना चाहिए। काम पर अंकुश न होने पर सर्वनाश होता है।

यां वृत्तिं वर्तते तातो यां च नः पितामहः।
तां वृत्तिं वर्तसे कश्चिद् या च सत्पथगा शुभा।। – -74

अपने पिता और पितामह के द्वारा आचरित मार्ग पर चलना चाहिए। वही सन्मार्ग है तथा शुभ फल देनेवाला होता है।

[100]
अवश्यंभाविता

कर्मो का फल तो भोगना ही पड़ेगा। यह कैसे होता है इसे एक दृष्टांत द्वारा बताया जारहा है। राजा परीक्षित को, बुद्धि विचलित होने पर ,तपस्वी को भी अपमानित करने का साहस हो गया। इस जघन्य काम करने के कारण उन्हें तत्काल परिणाम भोगना अवश्यंभावी हो गया। राजमद और विवेक का त्याग होने पर ऐसा होता ही है। एक राजा को सुरक्षित (क्वरंटाइन)रखने के लिए किये गए सारे राजकीय प्रयास असफल रहे। अतः सर्पदंश के द्वारा उनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र जनमेजय ,अपना दोष, मूल कारण न देखते हुये, सर्प की जाति ही समाप्त करने का उपक्रम करने मे लगे कन्तु असफल रहे। मुख्य शत्रु तक्षक बच गया। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर लगता है कि तक्षक तो प्रकृति का एक उपकरण था जिसके माध्यम से अपराधी को अवश्यंभावी फल भोगना पड़ा, मुख्य कारण तो भोक्ता का कर्म ही था।

प्रकृति का प्रकोप होने पर,बचाव के लिए ,मानवीय उपक्रम होना उचित है। इससे भी ईश्वरीय विधान का पोषण होता है। लेकिन,इतना ही पर्याप्त नहीं है। मूल कारणों का

निराकरण आवश्यक होता है। इस समय कोवड19 की महामारी से पूरा विश्व त्रस्त है। व्यवस्था और दवा के द्वारा कुछ नियंत्रण होगा ही। कालान्तर मे,अपना संदेश समझा कर,प्रकृति स्वयं इसका उपसंहार करेगी। इस विभीषिका को पैदा करनेवाले तथा भोगनेवाले सभी को एक अमूल्य शिक्षा ग्रहण करने का अवसर है। इससे बचने के लिए जो उपाय बताए जारहे हैं वे सब हमारी संस्कृति मे सामान्य आचार के रूप मे विहित हैं। प्रत्येक स्तर के लोगों मे,जीवनशैली के अनुसार निरोधक क्षमता मे अन्तर होता है। अतः सम्पर्क मे सावधानी आवश्यक होती है। शौचाचार के नियमों का पालन करना चाहिए। वनौषधियों का महत्व जानना चाहिए। धर्म का आश्रय और असत्य तथा मिथ्याचार का त्याग करना चाहिए। विश्वकल्याण का चिंतन हमारी संस्कृति का संदेश है। हम अपनी संस्कृति को स्वयं समझें और दुनिया को बतायें इसके लिए यह उचित समय है।

[101]
देश की मौलिक पहचान

प्रत्येक देश,अपनी सीमाओं के अतिरिक्त, कुछ अन्य विशिष्ट पहचान रखता है। संस्कृति और भाषा के अलावा साहित्य कला,ऐतिहासिक स्थल,परम्पराएं,नदी, पहाड,जलवायु आदि की दृष्टि से तथा कहीं- कहीं धर्म के आधार पर सभी अपनी पहचान रखते हैं। इन तत्वों में से सीमा,संस्कृति एवं भाषा सबसे महत्वपूर्ण हैं। इनकी सुरक्षा के लिए प्रत्येक समर्थ और स्वाभिमानी देश तत्पर रहता है।

उपर्युक्त तथ्य अमेरिका यूरोप,अरबी देश,रूस चीन जापान आदि सशक्त स्थानों के अलावा पूर्वी द्वीपों,इण्डोनेशिया आदि को भी देखने पर प्रमाणित होता है। भारत जैसा विशाल देश अपनी पहचान नहीं बना पारहा है, यह आश्चर्यजनक है। यहां प्राचीनतम वैदिक संस्कृति, विशाल वाङ्मय के साथ संस्कृत भाषा जो विश्व की भाषाओं में सर्वोत्तम मानी जाती है, उत्तराधिकार में प्राप्त हैं। संस्कृत से उत्पन्न समृद्ध हिन्दी भाषा का देशव्यापी प्रचार होचुका है। विभाजन के बाद वैधानिक ढंग से स्थापित देश की सीमाएं हैं। इनको सुरक्षित और पहचान के रूप में प्रतिष्ठित न करपाने का कारण देश के शीर्ष नेताओं में स्वाभिमान का अभाव, गुलामी की मानसिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति को स्थापित करने की इच्छा रही है। सत्तर वर्ष से अधिक हो गया हम अपनी पहचान को उजागर नहीं कर पाये। करना तो पड़ेगा ही। इस देश मे हिन्दू वैदिक संस्कृति को पहचान के रूप में मानने मे विवाद नियम के परे एवं अतार्किक है। विश्व की सभी संस्कृतियों का मूलस्थान निर्धारित है। ईसाई,पारसी, मुसलमान,यहूदी,कन्फ्यूशियनिज्म आदि सभी प्रमुख संस्कृतियों के मूलस्थान सर्वविदित हैं। हिन्दू संस्कृति का भारत के अलावा अन्यत्र मूलस्थान होना प्रमाणित और संभव नहीं है। अन्यत्र से आना मानने पर भी विशाल भारत भूमि को सहस्त्रों वर्ष पूर्व विकसित और संस्कृतिसम्पन्न करनेवाले आर्यों का ही यह देश माना जायेगा। यहां जंगल, यायावर जातियां, असंस्कृत लोग ही रहते रहे जिन्हें समाज बनाने और समाज में स्थान देने का कार्य आर्यों ने किया है। इस देश को अपनी पहचान बताने वाली कोई अन्य संस्कृति नहीं है। हजार वर्ष तक शोषण करनेवाले

आक्रान्ता कोटि के लोगों का विरोध सदैव होता रहा तथा उन्हें भगाने में सफलता भी मिली। अतः सहस्त्रों वर्ष से स्थापित भारतीय संस्कृति का मूलस्थान निर्विवाद है। हमे अपनी पहचान को सुरक्षित रखने के लिए भूमि ,संस्कृति एवं भाषा सम्बन्धी समस्त विवाद समूल समाप्त करना आवश्यक है।

[102]
जगत्प्रपंच का शास्त्रीय स्वरूप

अद्वैत वेदांत मे माना जाता है- अध्यारोपापवादाभ्याम् निष्प्रपञ्चः प्रपञ्चते। अर्थात् अद्वैत ब्रह्म प्रपंच रहित है किन्तु अध्यारोप और अपवाद द्वारा प्रपंच करता हुआ लगता है। सत्य वस्तु का आवरण करके, मिथ्या के रूप में दिखाना अध्यारोप है। मिथ्या स्वरूप को समाप्त करके, मूलरूप में प्रस्तुत कर देना अपवाद है। यह संसार ही प्रपंच है जो सृष्टि और प्रलय के रूप मे आता-जाता रहता है। सत् वस्तु ब्रह्म है। अपनी माया की शक्ति से आवरण करके,व्यावहारिक और प्रतिभासिक जगत को प्रदर्शित करनेवाला स्वयं ब्रह्म है। माया को समेटकर प्रलय भी वही करता है। यही उसका प्रपंच है। इसी प्रपंच को समझना अपवाद है।

ब्रह्म के विषय मे जो शास्त्रज्ञान है, वह जीव के विषय मे भी जानना उपयोगी है। किसी स्थिति मे जीव ही ब्रह्म होजाता है। जीव की परिमित शक्ति को अविद्या कहते हैं जिसके द्वारा वह भी प्रपंच करता है। सांसारिक विषयों का चिन्तन अध्यारोप तथा आत्मचिंतन अपवाद के रूप मे हैं जिन्हे जीव भी करता है। अविद्या एक कृतक और सीमित शक्ति है अतः यही जीव के दुखों का कारण बन जाती है। सांसारिक विषयों से तृप्ति देने की सामर्थ्य इसमे नहीं होती है। इसलिए इसको समाप्त करके ,अपवाद की स्थिति, आत्मरति की स्थिति मे जाना जीव का लक्ष्य है। तब जीव ही ब्रह्म होजाता है। अध्यारोप अविद्या है,अपवाद विद्या है। दोनो के उपयोग मे सन्तुलन करना जीवन की साधना है।

[103]
मनोविकारों का उपयोग

यावन्मात्र ,जड़चेतन ,गुणदोषमय सृष्टि है सब की उपयोगिता है। संसार इन्हीं द्वन्दों पर आधारित है। सृष्टि के लिए सात्विक,राजस तथा तामस तीनों गुण समान रुप से आवश्यक है। एक तत्व के बढजाने और दूसरों के समाप्तप्राय होने की दशा मे स्वयं प्रकृति संतुलन बनाती है। बुद्धिमान मनुष्य भी प्रकृति से प्रेरणा लेकर,संतुलन बनाता रहता है।

गुण और दोष सबके उपयोगी होने पर अच्छे और बुरे का भेद क्यों किया जाता है, यह प्रश्न उठ सकता है। इसका उत्तर व्यवहार मे ही स्पष्ट होता है। दोष या विकार के प्रयोग से बुरा परिणाम तो निकलता ही है किन्तु उससे भी शुभ परिणाम निकालना अच्छा है। विष की औषधि विष से ही बनती है। गुणों के प्रयोग से भी अशुभ परिणाम

निकालना बुरा है। कुपात्र को दी गई विद्या बुरा परिणाम देती है। कुयोग और सुयोग ही अच्छे और बुरे के निर्णायक हैं। सदिच्छा तथा विवेकबुद्धि के होने पर सुयोग बनता है।

सामान्य और विशेष परिस्थिति के आधार पर विचार करके गुण और दोष मे व्यावहायिक अन्तर शास्त्रों में बताए गए हैं। सामान्य बुद्धि के लोगों के लिए सामान्य नियम जानना ही संभव है। विशेष परिस्थिति मे शास्त्र का अभिप्राय विद्वान ही बता सकता है। गुण का उपयोग संहार के लिए तथा दोष का प्रयोग रक्षा के लिए विशेष परिस्थिति में होता है। यह विशेषज्ञ ही कुशलता से कर सकता है। उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए प्रकृति द्वारा प्रदत्त क्रोध नाम से जाने गए मनोविकार की उपयोगिता तथा उनसे हानि पर विचार करना ,एवं समन्वय बनाना शिक्षाप्रद होगा। कथावाचक तथाउपदेशक इसकी निन्दा करते रहते हैं। निन्दनीय ढंग से इसका दुरुपयोग भी अत्यधिक हो रहा है। निन्दनीय तो है ही। इसे उपयोगी बनाना समयोचित है। देवताओं के क्रोध के सम्मिलित रूप ग्रहण करने पर महिषासुरमर्दिनी प्रगट हो गई थी। समयोचित क्रोथ के द्वारा ही महापुरुषों ने धर्म तथा संस्कृति की रक्षा किया है,इसके अनेक उदाहरण हैं। आज,अनीति,असत्य आदि के प्रकोप के साथ भारतीय संस्कृति को समाप्त करने के प्रयास सब केलिए चिन्ताजनक हैं। अब कल्याणकारी क्रोथ करने का समय है। इस क्रोध को धरण करके जीवन यापन की मानसिकता भी तपस्या है। तपस्या के द्वारा उत्पन्न शक्ति के एकीभूत दुर्गारूप मे होने पर हमारी संस्कृति के विरोधी समाप्त हो जायेंगे। तपस्या से ही हम सशक्त रहे हैं। अपने अमोघ अस्त्र का स्मरण करते हुए तपस्या करने का समय है। इसी आधार पर ईश्वरीय विभूति के आगमन की प्रतीक्षा भी सुखद रहेगी।

[104]
पशु और पशुपति

दुर्बल बुद्धि एवं अज्ञान के कारण,परिस्थिति को न समझने वाले लोग देश-काल की परवाह नहीं करते हैं। वे,मनके वश मे रहकर आचरण करने वाले ,पशुवत माने जाते हैं। वे सदैव असुरक्षित रहते हैं। मन को वश मे करके रहनेवाला,बोधवान , ज्ञाननिष्ठ व्यक्ति स्वाभाविक आचरण से ही सुरक्षित रहता है। अतः, वह भी देश-काल की परवाह नहीं करता है। वह पशुपति के कोटि का माना जाता है। ज्ञानी और मूढ दोनों का आचरण एक जैसा होता है किन्तु परिणाम मे भेद होता है।

महामारी की दशा मे मनमानी करनेवाले,अपने को अमर समझते हैं। वे स्वयं को तथा दूसरों को भी संकट मे डालते हैं। युक्ताहारविहार करने वाला संयमी तथा एकांतसेवी पुरुष,स्वयं सुरक्षित रहता है तथा दूसरों को भी ,अपने आचरण से प्रेरणा देता है। इस तरह पशु और पशुपति का भेद स्पष्ट होता रहता है। एक कंटकाकीर्ण मार्ग पर नंगे पांव चलकर दुखी होता है. दूसरा पदत्राण से सुरक्षित होकर निश्चिन्त यात्रा करता है।

ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धिबल दिया है। पशुपति नहीं तो मनुष्य बने रहने का प्रयास करना बुद्धि का उपयोग है। ज्ञाननिष्ठा के कवच से आवृत्त होने की सामर्थ्य नहीं होती है

तो पशु बनने से अवश्य बचें। विवेक,संयम,सदाचार,सत्संग आदि मानव के लिए सुलभ ओषधियों के सेवन से अपने को स्वस्थ एवं सुरक्षित मनुष्य बनाये रखना भी पर्याप्त है।

[105]
समाज का नायक

भारत मे जन-जायकों का भेड़िया धसान है। एक पुरानी कहावत है– लीडरों की भीड़ है ,फालोवर कोई नहीं। सब तो जनरल हैं यहां,आखिर सिपाही कौन है। यह बात इस समय बहुत सही है। तथाकथित जननायकों का तेवर अफसरों के सामने आसमान में ही रहता है,चाहे वे छोटभैया ही हों। यह स्थिति भष्टाचार को बढ़ा रही है।

छोटे जननायकों से कई गुना अधिक हानि समुदाय का मसीहा बनने वाले नेताओं के द्वारा हो रही है। दलितों का मसीहा बननेवाला,दलितों की एकता करके ,उनके वोट से, अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। दलितों को मुख्य समाज की धारा से अलग करके, उन्हें स्थायी रूप से दलित बने रहने की व्यवस्था करता है। इससे,दलितो तथा पूरे भारतीय समाज की अपूरणीय क्षति हो रही है। सामाजिक तथा प्रशासनिक समस्याएँ उग्र होती जारही हैं। इसी तरह की समस्यायें अन्यत्र भी पैदा की जा रही हैं।

नारी को सम्मान दिलाने के बहाने परिवार तथा भारतीय संस्कृति को नष्ट करनेवाले मसीहा अपनी निजी योजना सिद्ध कर रहे हैं। समुसलमानों के मसीहा उग्रतापूर्वक कार्य करते हुए देशद्रोही जैसा आचरण कर रहे हैं। इन्ही लोगों की सफलता को देखते हुए, प्रत्येक जाति, सम्प्रदाय, व्यवसाय,प्रदेश, तथा वर्ग के लिए मसीहा पैदा हो रहे हैं। इस समय ,वर्षा मे शिलीन्ध्र (कुकुरमुत्ता) की तरह, मसीहा लोग तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। स्वतंत्रता के पहले से यह कुचक्र आरंभ हो गया था। अब भयावह हो रहा है।

इस समय भेद कारक जननायकों को हतोत्साहित करने तथा समस्त समाज के विषय मे चिन्तन करने की आवश्यकता है। समाज मे इतनी शक्ति नहीं रह गई है। अतः सत्ता के द्वारा ही यह कार्य संभव है। नैतिक सामाजिक संगठन के विचारों तथा क्रियाकलापों से भी बहुत सहायता मिल सकती है। पूरे भारतीय समाज के नायक की उत्पत्ति और प्रतिष्ठा केलिए वातावरण बनाना आवश्यक हो गया है। तभी सच्चा देश- सेवक भी पैदा होगा।

[106]
धैर्य के निकष

कालिदास ने धैर्य को परिभाषित करते हुए लिखा है– विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः। अर्थात् विषम परिस्थिति के उपस्थित होने पर भी जो उद्विग्न नहीं होता वह धैर्यवान कहा जाता है। सामान्य परिस्थिति मे तो सभी धीरबीर होने का प्रदर्शन कर सकते हैं। परीक्षा समय आने पर होती है। यह धर्म का प्रथम निकष है।

मनु भगवान ने, धर्म के दश लक्ष्मण बताते हुए,धैर्य को ही सर्वप्रथम रक्खा है । विषम परिस्थिति मे, मूढ़ की तरह अप्रभावित रहना धैर्य का पर्याप्त लक्षण नहीं है। शुतुरमुर्ग की तरह, अज्ञानजन्य निश्चिंतता धैर्य नहीं है। नशे मे सो जाना अधैर्य है। ऐसी

स्थिति मे भी अपना तथा समाज का आचरण एवं व्यवहार व्यवस्थित रखना धर्मसम्मत धैर्य है। धैर्य का दूसरा निकष धर्म है।

धैर्य के दो स्रोत हैं। प्रथम पूर्वजन्मों की तपस्या से प्राप्त स्वाभाविक उपलब्धि है जो जन्मजात होती है। द्वितीय बुद्धि को विकसित और निश्चयात्मक शक्ति से सम्पन्न करने की साधना है। यह दूसरा स्रोत ही हमारे द्वारा अपनाने योग्य है। इसके लिए ही शास्त्र तथा सत्संग के सेवन का विधान है। सृष्टि की बहुत सी प्रजातियां नष्ट हो चुकी हैं। मनुष्य के पास बुद्धिबल है। इसके द्वारा धैर्य और धर्म का विवेकपूर्ण प्रयोग करके मानव जाति समस्त वैश्विक आपदाओं को समाप्त करने में समर्थ है। सृष्टिसंचालन का संविधान बनाने वाले ईश्वर तथा उसे कार्यान्वित करनेवाली प्रकृति के अनुकूल आचरण करते में भी धैर्य रखना समयोचित कर्तव्य है।

[107]
रामायण और महाभारत- श्रद्धास्पद धर्मशास्त्र

रामायण और महाभारत को मात्र काव्य के रूप मे देखना ,हमारी संस्कृति के लिए अहितकर है। यह दोनों ग्रन्थ सामान्य भारतीय समाज के लिए,उत्कृष्ट महाकाव्य के साथ ही, इतिहास, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि रूपों मे भी वेद की तरह मान्यता प्राप्त है। इनकी कथाएं भारतीय ही नहीं, बहुतेरे विदेशी कवियों के लिए भी उपकारक हैं। इनकी कथाओं के साथ ऐतिहासिक छेड़खानी या उनमें विक्षेप का प्रयास,हमारी श्रद्धा को आहत कर सकता है।

आजकल ,रामायण सीरियल मे आए, विभीषण के चरित्र को लेकर तर्कवितर्क देखा जा रहा है। इस विषय में सबसे प्रामाणिक वाल्मीकीय रामायण होने के कारण,उसी के अनुसार विचार करना संगत होगा। विभीषण की भेंट, लंकादहन के पूर्व,हनुमान से नहीं हुई थी। उसके पहले उसने रावण के किसी कार्य का प्रतिवाद नहीं किया था। हनुमान के पराक्रम को देखकर और राम के पराकम की कहानियाँ सुनकर वह विचलित होगया। आक्रमण को सन्निकट देखकर भयभीत विभीषण ने रावण को राम के सामने आत्मसमर्पण करने पर दबाव बनाना चाहा। रावण ही नहीं,कोई स्वाभिमानी वीर इसे स्वीकार नहीं कर सकता था। इस धृष्टता पर,रावण से डाटखाने पर, विभषण का आजीवन ऐश्वर्य भोग करके कुसमय में भातृत्याग करना निन्दनीय कार्य था।

राम नीतिविषारद थे। विभीषण को आदर और प्रलोभन देकर उसे पूर्णतया वश मे कर लिए। विभषण राम के लिए अच्छा व्यक्ति नहीं बल्कि उपयोगी सहायक ही बन सका। यह बात लोक मान्यता से प्रमाणित है। लोक मे, विभषण को घर के भेदिया के रूप मे निन्दनीय जाना जाता है।

कथा को बदलकर, विभीषण को जनता की रक्षा करने वाला बनाने के प्रयास से केवल विभीषण के चरित्र को उत्कृष्ट बनाया गया है। थोड़ा और परिवर्तन करके रावण को भी जनता का हितैषी सिद्ध किया जा सकता है। यदि मानलें कि रावण ने अपने स्वाभिमान की रक्षा,राक्षसकुल के नाश की प्रतिज्ञा को झूठी करने तथा जनता की रक्षा

करने के लिए, विभीषण को बलात राम के शरण मे भेजा था। दोनों भाइयों का उद्येश्य अच्छा था। ऐसी स्थिति में सभी जनता के सेवक और आदर्श चरित्र के बन सकते हैं। लेकिन ऐसा करने से सारी ऐतिहासिक और धार्मिक मान्यताये ध्वस्त होजायेगी। ऐसी कल्पनाओं को विराम देकर,मूल इतिहास को सुरक्षित रखने मे ही हमारे संस्कृति की सुरक्षा है। इन पूज्य ग्रन्थों को गल्प और उपन्यास की श्रेणी में न घसीटा जाय। ऐसा करनेवाले दण्डित किये जाय। इन ग्रन्थों को पूज्य और पूर्ण विश्वसनीय बनाये रखने के लिए इनकी कथाओं को ऐतिहासिक और मूलरूप में रखना हमारी संस्कृति की रक्षा के लिये आवश्यक है।

[108]
सम्माननीयता-सार्वकालिक और तात्कालिक

सम्मान पाने का सार्वकालिक आधार योग्यता या पात्रता है। किसी भी क्षेत्र मे उत्कृष्ट होना,सम्माननीय बनाता है। मनुष्य के क्रियाकलापों के अनेक आयाम हैं। उन आयामों के उत्कृष्टता का भी तरतम निर्धारित है। उत्कृष्ट कोटि के कार्य मे विशिष्टता,सर्वोपरि सम्मान का पात्र बनाती है। उत्कृष्टता के निर्धारण में,शिक्षक या आचार्य का स्थान पहले से ही भारत में ही नहीं विदेशों में भी, सर्वोपरि रहा है। राम गुरु वशिष्ठ को पूज्य मानते थे तो सिकन्दर भी अरस्तू को बहुत सम्मान देता था। आजकल सभी क्षेत्रों में शंकास्पद व्यक्ति पैदा होरहे हैं, तथापि योग्य आचार्य को सर्वोपरि और सार्वकालिक सम्माननीय मानना अब भी उचित है। अन्य क्षेत्रों के महत्व का भी तारतम्य पहले से भी बना है। आचार्य ही उसकी तात्कालिक व्यवस्था दे सकता है।

समय-समय पर,किसान,सैनिक पुलिस,डाक्टर सफाईकर्मी,मजदूर आदि को विशेष सम्मान देते हुए देखा जाता है। विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए या संवल देने के उद्देश्य से यह तात्कालिक सम्मान उचित है। इसमें भी राजनैतिक दांवपेंच नहीं होना चाहिए। सम्मान भी कभी-कभी घातक होता है। विकृत मानसिकता वाले, लोभी, कायर, कामचोर व्यक्ति सम्मान नहीं,अनुशासन के पात्र होते हैं। ऐसे लोगों को,विशेष स्थिति मे भी, प्रलोभन के साथ ही दण्ड की व्यवस्था भी आवश्यक होती है अन्यथा ये लोग स्वयं गम्भीर समस्या बन जाते हैं।

जार्ज बर्नर्ड शा ने अपने आर्म्स एण्ड मैन नामक उपन्यास में माना है कि सैनिक बहादुरी दिखाने के लिए नहीं लड़ता है बल्कि इसके लिए बेतन पाता है,अतः लड़ना उसका कर्तव्य है। यह मान्यता उचित है। वही काम करने के लिए चुने जाने हेतु लोगों की भीड़ रहती है। किसान की बात भिन्न है, अन्य सभी वेतनभोगी या अर्थोपार्जक लोग अपना काम ईमानदारी से करने के लिए मजबूर किए जासकते है। सम्मान किसी वर्ग को खुश करने के लिए नहीं,वल्कि किसी व्यक्ति की विशिष्टता के आधार पर निष्पक्ष रूप से देना प्रेरणादायक है।

[109]
संयमित सामाजिक सम्बन्ध (संसास)

जलवायु के प्रदूषण और कीटाणु (वायरस) से उत्पन्न होनेवाली महामारी से बचने के लिए विश्वस्तर पर सुधार पर अधिक बल दिया जारहा है। इस स्थिति मे हमें अपनी संस्कृति का पुनरीक्षण तथा शास्त्रों का आदेश-पालन करना, उपादेय है। अक्के चेन्मधु विन्देत् किमर्थं काननं ब्रजेत् (घर में ही मधु मिल जाय तो जंगल जाना व्यर्थ है।) यह प्रचलित मान्यता है।

पर्यावरण की शुद्धि के लिए अनेक संकल्प किए जाते हैं किन्तु कार्यान्वयन बहुत कम होता है। अपने यहां, प्रकृति के तत्वों को देवत्व प्रदान करके उनकी शुद्धि के शास्त्रीय विधान हैं। इस दिशा में राजकीय प्रयासों के साथ ही सामाजिक चेतना से, नित्य हवन आदि द्वारा तथा स्वच्छता के नियमों का पालन करने पर स्थाई लाभ होगा। प्रदूषण से कीटाणुजन्य महामारी का प्रकोप भी बढ़ता है। उस पर विचार करें। हमारे यहां स्पृश्यास्पृश्य का भेद शास्त्रविहित है। यह भेद जाति के आधार पर नहीं बल्कि कर्म, खानपान, रहन सहन तथा देशकाल के आधार पर किया जाता था। वह विधान अब वैज्ञानिक ढंग से भी उपयोगी प्रमाणित हो रहा है। सामाजिक संबंधों मे दूरी,खानपान के नियमों में शुद्धता,एकांत सेवन हाथपैर धोकर भोजन करना आदि धार्मिक नियमों को वैज्ञानिक मान लिया गया है। छिपकली, गिरगिट जैसे जहरीले जन्तुओं के स्पर्श होने पर वस्त्र के साथ स्नान करने (सचैलं स्नानमाचरेत्) का आदेश अब वैज्ञानिक होगया है। इसी तरह गन्दगी मे रहनेवाले तथा संक्रमणशील वातावरण में कार्य करने वालों से भी व्यवहार मे दूरी रखने का विधान है क्योंकि कीटाणु उनके ऊपर रहते हुये भी, रोधक क्षमता अधिक होने के कारण उन्हें हानि नहीं पहुंचा सकता था। वहां सुप्त रहकर वही कीटाणु रोधक क्षमता की कमी वाले व्यक्ति को पाकर उसे प्रभावित कर देता है। यह सब बातें शास्त्रीय ही नहीं वैज्ञानिक भी सिद्ध हो चुकी है।

सार्वजनिक स्थान पर छुआछूत की बात एक निन्दनीय और दण्डनीय अपराध मानी जाती है। इस प्रथा का बहुत दुरुपयोग हुआ है। अतःस्पृश्यास्पृश्य की पुरानी बात को छोड़ना उचित है। आधुनिक उपयोगिता की दृष्टि से, शासन स्तर पर सार्वजनिक स्थल पर भी सोसल डिस्टेन्सिग का उपयोग तथा रहन सहन,खानपान के नियमों में परिवर्तन पर बल दिया जा रहा है। इसको ही संयमित सामाजिक सम्बंध (संसास) के रूप में अपनाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य हो गया है। इस कर्तव्य के पालन में व्यवधान को दूर करने के लिए,राजकीय नियमों में संशोधन द्वारा, आवश्यक अधिकार भी दिए जाय। आपदाओं से निपटने के लिए स्थाई व्यवस्था करने पर निश्चितता रहेगी तथा भारतीय संस्कृति का भी समादर होगा।

[110]
माण्डूक्योपनिषद् –शास्वपरिचिन्तन

आचार्य शंकर ने जिन उपनिषदों पर भाष्य लिखा है, उनमें सब से लघुकाय यही माण्डूक्योपनिषद है। कुल बारह मंत्र हैं । गौड़पादाचार्य ने कारिका लिखकर, इसे विशिष्टता प्रदान किया है। अद्वैत वेदांत को प्रतिष्ठित करने मे कारिक के साथ इस उपनिषद का बड़ा महत्व है। इसमे सूत्ररूप मे,अद्वैत सिद्धांत की तत्वमीमांसा तथा ज्ञानमीमांसा दोनों निहित हैं। संक्षेप मे,महत्वपूर्ण अंश दिए जा रहे है।

सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म(1/2)– इसके दवारा प्रत्यक्ष ब्रह्म को समष्टि रूप से प्रतिपादित करते हुए,आत्मा को भी ब्रह्म ही बताया गया है। आगे इसी आत्मा को चतुष्पात् कहा गया है। आत्मा को ही चार रूपों में देखा जाता है। आत्मा ही ब्रह्म है अतः उसमे ब्रह्म की भी अनुभूति चार चरणों में होना स्वाभाविक है। जीवात्मा का प्रथम पाद (स्वरूप) जाग्रत अवस्था है । यही वैश्वानर (विराट सृष्टि) के रूप मे ब्रहम का प्रथम पाद है। विवृत स्वरूप होने कारण दोनों मे साम्य है। द्वितीय पाद मे आत्मा स्वप्नस्थ रूप मे होता है। ब्रह्म का यह तैजस (प्रजापति का अपंचीकृत भूतोवाला) दूसरा पाद है। आत्मा का तीसरा पाद सुषुप्ति है। ब्रह्म का भी यह पाद प्राज्ञ, प्रज्ञानघन कहा जाता है। यही माया के साथ ईश्वर का स्वरूप है। इन्हीं तीनों को गौड़पादाचखर्य ने लिखा-

बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः। धनप्रजस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः।। चतुर्थ पाद में आत्माऔर ब्रह्म दोनों एकरूप हैं। नेतिनेति द्वारा जिसका बोध कराया जाता है, वही शान्त, शिव और अद्वैत तत्व आत्मा भी है, वहीं विज्ञेय है। वही आत्मा ओंकार के रूप मे उपास्य बताया गया है। ओंकार की अ,उ म और अर्ध मात्रा के चार रूपों द्वारा क्रमषः,चतुष्पात आत्मा की उपासना का विवेचन किया गया है। अमात्र चतुर्थ रूप मे,ओंकार ही आत्मा है। यही ब्रह्म है। इस तरह आत्मतत्व का स्वरूप तथा उसके अनुभूति के उपाय का निरूपण हुआ है।

[111]
पंचकोश-परिचय-शास्त्र परिचिन्तन

उपनिषदों तथा योगशास्त्र मे,जीवन की साधना के लिए,पञ्चकोश का चिन्तन एक महत्वपूर्ण प्रकरण है। जीवन की क्षणभंगुरता से लेकर इसके अमरत्व तक का ज्ञान इसमे निहित है। विशेष परिस्थिति में मानसिक शांति तथा कर्तव्यबोध कराने में भी यह उपयोगी है। संक्षेप में, यह प्रकरण प्रस्तुत है।

जीवात्मा पांच कोशों मे बद्ध होता है। स्थूल और सूक्ष्म के विचार से विवरण क्रमशः दिया जा रहा है। प्रथम अन्नमयकोश है जो पंचभूतों से बनी भौतिक शरीर के रूप मे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। स्थूल शरीर ही जीवात्मा का विश्वरूप है। क्रम मे द्वितीय, प्राणमयकोश है जो पांच कर्मेन्द्रियों तथा पांच प्राणों को मिलाकर बनता है। यह जीव की क्रियाशक्ति है । तृतीय,मनोमयकोश है जो मन के साथ पांच ज्ञानेन्द्रियों को मिलाकर

बनता है। यह इच्छाशक्ति है। चतुर्थ, विज्ञानमयकोश है जो अहंकार के साथ बुद्धि को मिलाकर बनता है। यह ज्ञानशक्ति है। पंचम आनंदमयकोश है जो चित्त के रूप मे होता है। बाद के चारों कोशों को मिलाकर सूक्ष्मशरीर कहा जाता है जिसमें उन्नीस तत्व होते हैं। यह जीव का तैजस रूप है। चित्त ही अन्य कोशों को समाहित करके, आनन्दमय रूप मे हो सकता है। यह कारण शरीर है। स्थूल सूक्ष्म तथा कारण तीनों शरीरों, के विगलित होने पर शुद्ध आत्मतत्व अवशिष्ट रहता है। यहीं साधना पूर्ण होती है। स्थूल शरीर का मोह छोड़कर इसके द्वारा सत्कार्य करने का व्रत हमें सांसारिक कष्टों से मुक्ति दे सकता है। इसीसे,सूक्ष्म तथा कारण शरीरों में सुखी रहते हुए कृतकृत्य हो सकते हैं। लोक को बनाने पर परलोक स्वतः बन जाता है।

[112]
चरैवेति

चरन्वै मधु विन्दति– आशय यह है कि अपने निर्धारित मार्ग,कार्य या स्वधर्म के पालन मे आरूट रहने पर बहुत बड़ा लाभ होता है। कार्य करने में अपना अधिकार है, फल की प्राप्ति अनेक प्रकार के संयोग बनने पर होती है- कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। अतः,अपनी दिशा मे चलते रहें जिससे जो नहीं दिखाई पड़ रहा है वह भी दिखाई पड़ने लगता है,जो कल्पना नहीं किया है वह अप्रत्याशित फल भी मिल सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि नकारात्मक चिंतन छोड़कर, सकारात्मक चिन्तन करने का प्रयास करें। इससे चित्त की प्रसन्नता तथा स्वास्थ्यलाभ होता है। सकारात्मक चिन्तन मे सबसे बड़ी बाधा दोषदर्शन है। अहंकार ईर्ष्या तथा अज्ञान के कारण दोष देखने और निन्दा करने की आदत पड़ जाती है। गुण को भी दोष मानना बहुत हानिकारक है। सर्वत्र दोष या गुण का ही दर्शन करना वैचारिक दासता है। दोनों का सम्यक् आकलन बुद्धिमानी है। इस विषय में मार्गदर्शन हेतु तुलसी दास के द्वारा प्रदत्त ज्ञान प्रासंगिक है—

जड़ चेतन गुणदोषमय विस्व कीन्हि करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार।।
ताते कछु गुणदोष बखाने ।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।।

गुणदोष तथा प्रशंसा या निन्दा सभी का ज्ञान होना चाहिए और उनका उपयोग सकारात्मक चिन्तन तथा लोकहित के लिए करना ,संत का लक्षण बताया गया है। जीवन बहुत मूल्यवान होता है। लक्ष्य की ओर अनवरत चलते रहना ,जीवन की साधना तथा लक्ष्यभेदन का उपाय है।

[113]
निर्णय का उत्तरदायित्व

इस विषय पर अस्तित्ववादी दर्शन, आकस्मिकता, भाग्य आदि को आधार बनाकर नहीं ,वल्कि प्रचलित व्यवहार को दृष्टि मे रखकर विचार किया जा रहा है। सत्ता के शीर्ष

पर स्थित व्यक्ति या समिति के आदेश का ही क्रियान्वयन होता है। निर्णयात्मक आदेश देना सत्तापक्ष का अधिकार ही नहीं कर्तव्य भी है। कभी-कभी गम्भीर ममाले में निर्णय लेना दुधारी तलवार है। नेपोलियन अपने देश में सर्वमान्य नेता था। कान्टिनेन्टल सिस्टम को लागू करने का निर्णय उसने साहसपूर्वक लिया। इससे लाभ के स्थान पर अपूरणीय हानि हो गई। इतिहास मे उसे महत्वाकांक्षी किन्तु अदूरदर्शी माना गया। इस निर्णय के कारण वह निन्दनीय नहीं माना गया। निर्णय लेने से टालमटोल करने पर स्थित बदतर होती है और आचरण शंकास्पद होजाता है। भयवश निर्णय न लेना कायरता है। बहुधा सफलता की संभावना से उत्पन्न आत्मविश्वास के कारण, आत्मसम्भावित लोग तत्काल निर्णय लेते हैं और अनिश्चय होने पर ही विभिन्न स्तरों से सम्मति लेते हैं। उस समय नीति स्मरण आती है-

न गणस्यागतो गच्छेत सिद्धिं पाप्ते गतिः समा।
यदि कार्ये विपत्तिः स्यात् मुखरस्तत्र हन्यते।।

कितनी भी सतर्कता की जाय निर्णय का उत्तरदायित्व उसी का होता है जो अन्तिम आदेश पारित करता है। अतः पद पतिष्ठा, समर्थन या विरोध की परवाह न करके , निर्मल बुद्धि से यथासमय स्वधर्म का पालन करना प्रशंसनीय है। मनुष्य केलिए कभीकभी जीवन से अधिक मूल्यवान विषय उपस्थित हो जाते हैं। तब संवेदनापूर्वक निर्णय लेना आवश्यक है। यश-अपयश अपने अधीन है. सफलता या विफलता ईश्वराधीन है। महापुरुषों का चरित्र यही शिक्षा देता है। व्यवहारजगत में, प्रत्येक स्तर पर यह नीति निरापद है।

[114]
पातञ्जल योग-शास्त्रपरिचिन्तन

पातञ्जल योगशास्त्र पूर्ण वैज्ञानिक शास्त्र है। इसका परीक्षण तर्क से नहीं,प्रयोग के द्वारा करना उपादेय है। भारतीय परम्पराके अनुसार मोक्ष परम पुरषार्थ है। योग का चरम साध्य कैवल्य है। निर्वाण, कैवल्य, परमधाम,मोक्ष,अपवर्ग,स्वरूपस्थिति,स्थितधी आदि शब्द विभिन्न शास्त्रों में प्रयुक्त, एकार्थक ही हैं। परम साध्य के अतिरिक्त, अर्थ, काम और धर्म की साधना के लिए भी उपाय योग के अष्टांग मे हैं। यम-नियम धर्म की शिक्षा देते हैं। आसन-प्राणायाम काम और अर्थ के साधक हैं। प्रत्याहार त्याग की शिक्षा देता है। यह पांचों मिलकर धारणा,ध्यान और समाधि मे सहायक हैं। संयम की परिभाषा मे धारणा, ध्यान और समाधि तीनों को सम्मिलित किया गया है। संयम से ही धर्मार्थकाममोक्ष ,पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि का मार्ग इस शास्त्र मे प्रतिपादित है। अर्थ और काम के इच्छुक लोग केवल आसन और प्राणायाम के रूप मे योगशास्त्र का प्रचार करते हैं। इसके साथ यम-नियम को भी जोड़ दें तो इस शास्त्र का सामाजिक महत्व प्रदर्शित हो सकता है।

आरम्भ के दो सूत्रों से बता दिया गया है कि चित्तवृत्तियों का निरोध योग है. इससे स्वरूपस्थिति प्राप्त हो जाती है। अष्टांग तथा अनेक अवान्तर विषयों को प्रस्तुत करने हेतु

वृहत् शास्त्र की रचना की गई है। शास्त्र का मुख्य प्रयोजन कैवल्यसिद्धि है। इस उद्देश्य से सम्बंधित मुख्य सूत्रों का विवेचन किया जा रहा है। समाधिपाद मे सूत्र 1/48,1/50,1/51 में ऋतम्भरा प्रज्ञा,उसका प्रभाव तथा उसके भी निरोध का वर्णन है, जिससे निर्वीज समाधि का लाभ बताया गया है। साधनपाद मे सूत्र 3/54 विवेक ख्याति (प्रसंख्यान) का प्रतिपादन है। ऋतम्भराप्रज्ञा इसी मे सहायक है। विवेकख्याति को तारकज्ञान कहा गया है। इसकी प्राप्ति साधना की पराकाष्ठा है। इसके द्वारा पुरुष और प्रकृति का सूक्ष्म अन्तर विदित हो जाता है। सूत्र 3/55 मे कैवल्य की स्थिति का स्वरुप पुरुष और प्रकृति का शुद्धिसाम्य बताया गया है। विवेकख्याति का भी प्रयोजन यहीं तक है और वह स्वरूप मे अवस्थित होजाता है। कैवल्य का वर्णन सूत्र 4/34 मे उपसंहार के रूप मे है। इसमें त्रिविध गुणों का पुरुषार्थ शून्य होने के साथ चिन्मात्र या स्वरूप में प्रतिष्ठा चरम उपलब्धि बताई गई है। सूत्र1/18,1/19 मे स्वरूप मे स्थिति के पश्चात भी जीवनयात्रा का स्वरूप बताया गया है। अष्टांगयोग, समाधिपर्यन्त, साधन है, साध्य तो कैवल्यसिद्धि ही है। प्रथम पैरा परिचयात्मक है। द्वितीय पैरा विद्वानों के अनुशीलन तथा विमर्श हेतु है।

[115]
जीवन और जीविका

सामान्यतः,प्राणधारण करते हुए, एक कालखंड मे विविध क्रियाकलाप करना, जीवन कहा जाता है। इस अवधि मे जीवनयापन के उपाय को जीविका कहते हैं। जीवन अन्न पर निर्भर करता है और अन्न जीविका से मिलता है। प्राण को अन्नमय कहा गया है। मन भी अन्न के सूक्ष्मतम अंश से बनता है। इसतरह जीविका का प्रभाव शरीर इन्द्रिय,प्राण,और अन्तःकरण के साथ भावी जन्म पर भी पड़ता है। अतः जीविका के चयन मे सतर्कता आवश्यक है। स्वधर्म का पालन सबसे निरापद उपाय है। कुलपरंपरा,स्वभाव, क्षमता प्रतिभा तथा योग्यता के अनुरूप स्ववश जीविका उत्तम होती है। एक उक्ति गुरु गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध है—

सहज मिला सो दूध है मांग लिया सो पानी छीन लिया सो रक्त है,यह गोरख कीबानी। इसका विश्लेषण करने पर भाव यह है कि स्ववश और सम्मानपूर्वक मिलनेवाला अन्न पवित्र होता है। परवश और दूसरे की सहायता से उपार्जित अन्न काम चलाऊ है। दूसरे को कष्ट देकर,बेगार और अनीति से प्राप्त अन्न अनर्थकारी होता है। कहा जाता है कि मनुष्य खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही जाता है। धनसंग्रह के विषय मे यह कहावत शिक्षाप्रद है। किन्तु मनुष्य की वास्तविक पूंजी उसके अंतःकरण में स्थित संस्कार, पापपुण्य, स्वभाव आदि के रूप मे होती है। उसे लेकर ही आना और जाना होता है। जीव की लम्बी यात्रा के लिए यही अन्न है जिसका उपयोग करने की विवशता होती है। पूर्वजन्मों से प्राप्त पूंजी को सुरक्षित रखते हुए उसे परिष्कृत करना जीवन का उद्देश्य और तदनुसार जीविका होनी चाहिए। अर्थ की पवित्रता ही वास्तविक पवित्रता है।

अर्थे शुचिः स शुचिः न मृद्वारिशुचिः शुचिः– भगवान मनु।।

जीविका के अनुसार जीवनपद्धति बनती है। त्याग,तपस्या,संतोष, लोकसंग्रह आदि जिसके स्वभाव में है,उसको सर्वोपरि सम्मान्य शिक्षक का कार्य अनुकूल होगा। इसी तरह वंशानुगत और स्वभाव से प्राप्त रुचि और योग्यता के अनुसार अपनायी गई जीविका सब के लिए कल्याणकारी है। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य न सिद्धिं विन्दता मानवः। गीता का यह सन्देश ,स्वधर्म की प्रतिष्ठाविषयक हमारी मान्यता को संबल देता है।

[116]
पूंजी की सुरक्षा

शास्त्रकारों ने अभिनिवेश यानी मृत्यु होने या विलीन होजाने का भय अन्तिम क्लेश बताया है। सभी शरीरधारी इससे ग्रस्त होते हैं। इसी भय से आतुर होकर गौतम बुद्ध राजमहल छोड़कर तपस्या मे लग गए। वहां भी मय उपस्थिति हो गया और सुजाता की खीर खाकर प्राणरक्षा किया। निर्भय होने केलिए, ज्ञानोदय तक शरीर की रक्षा करनी पड़ेगी। ज्ञान दो प्रकार का है। एक सांसारिक व्यवस्था दूसरा पारमार्थिक सिद्धि के लिए होता है। व्यवस्था पूरी होने तक दोनों तरह के ज्ञान के लिए शरीर आवश्यक है। शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

भय होने पर मनुष्य का धैर्य, बुद्धि, पराक्रम, सब कुछ क्षीण होजाता है। बुद्धि का सहारा लेकर,शरीर की रक्षा करना मनुष्य के लिए ही संभव है। संकट से भयातुर होना नकारात्मक चिन्तन है । बुद्धिबल का सहारा लेकर भय का कारण दूर करना सहज धर्म है। ग्रहीत इव केशेषु सद्यः धर्मं समाचरेत् । भय का त्याग, व्यवस्था के साथ ईश्वरीय कृपा पर निर्भर होने के आधार पर संभव है। सकारात्मक चिन्तन और साहस रखने वाला, निर्भय रहता है। संकट को दूर करने के लिए यही कर्मयोग है।

[117]
सहायक/सेवक के गुण

प्रज्ञा,विक्रम और अनुराग,यह तीन गुण,देश,समाज या किसी व्यक्ति की सहायता या सेवा के लिए आवश्यक हैं। हार्दिक प्रेम से रहित,संदिग्ध आचरणवाला और एकनिष्ठता से रहित सेवक व्यर्थ होता है। उसका पराक्रम और ज्ञान हानिकारक सिद्ध हो सकता है। सानुराग होने पर भी मूर्ख और कायर व्यक्ति अनुपयोगी होता है। बुद्धि के बिना प्रेम और पराक्रम निष्फल होजाते हैं। अतः तीनों का संयोग,राम के लिए हनुमानजी की तरह होना सौभाग्य की बात है। ऐसा व्यक्ति अपने क्षेत्र मे आदरणीय और प्राणप्रिय होजाता है। सहयोगी/सेवक के चयन मे,यह स्थापित नीति है। वर्तमान समय मे,अपने यहाँ देश और समाज के सेवकों की बाढ़ आगई है। असंदिग्ध और एकनिष्ठ व्यक्ति दुर्लभ होगया है और मिलता भी है तो उसका पराक्रम विफल करनेवाले आक्रामक होजाते हैं। ऐसे आक्रामक संदिग्ध श्रेणी के हैं, जिनका देश से नहीं, अपने स्वार्थ के कार्यक्रम और सत्ता से प्रेम है। एकनिष्ठता मे संदेह का कारण दिखाई पड़ने पर,सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति भी कमजोर होजाता है और संदिग्ध कोटि के लोग अव्यवस्था फैलाने में सफल होजाते हैं।

अतः,पारदर्शितापूर्वक अपनी एकनिष्ठता को स्थापित करना भी आवश्यक है। समाज और देश की सेवा के नाम पर शीर्षपद लेना कांटों का ताज है। सत्यनिष्ठा और उत्साहसम्पन्न होने पर उस व्यक्ति का विरोधी समाप्त होजाता है। ईश्वरीय परीक्षा मे सफलता भी ध्यान देने योग्य है। सखा धर्ममय अस रथ जाके जीत न कहं न कतहुं ऋपुताके।।

देश तथा उसके कर्णधारों की असहायता ,परस्पर दोषारोपण एवं दूर तक विकल्प का अभाव देखते हुए कुछ कहने के बजाय ईश्वर का स्मरण ही अन्तिम गति है (if you have a lemon make it a lermonade) यह बुद्धिमानी है। जो सर्वोत्तम होगा,वही घटित होगा इस विश्वास के साथ अपना आचरण और संयम सुरक्षित रखना ही समयोचित कर्तव्य है।

[118]
राजधर्म और राजनीति

शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए ,शासकवर्ग को भी अनुशासित रखना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हमारे ऋषियों ने राजधर्म का प्रतिपादन किया है। स्मृतियों में यह शास्त्र उपलब्ध है। इसके नियम देशकाल से बाधित नहीं हैं। ऋषिकल्प व्यक्ति के उत्पन्न होने की संभावना इस युग मे नहीं है। चारों वर्ण उन्हीं की संतान हैं। पूर्वकाल मे, राजा सभी वर्गों से हुए हैं किन्तु राजधर्म का अनुशासन उन्हें मानना पड़ता था। सभी क्षत्रियकोटि मे मान्य होकर राजकाज देखते थे। अपनी संस्कृति के अनुसार सुशासन के लिए,स्मृतियों मे विहित राजधर्म अब भी अनुपालनीय है। राजनीति देशकाल के अनुसार होती है किन्तु इसकी आधारशिला राजधर्म ही है। कौटिल्य, कामन्दक आदि प्रखर चिन्तकों ने आदर्श राजनीति के शास्त्र लिखकर हमारा मार्गदर्शन किया है। देशकाल के अनुसार विस्तार करके उनके आधार पर, उपयोगी राजनैतिक चिन्तन अब आवश्यक है। संविधान ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मण के लिए या दलित द्वारा दलित के लिए नहीं भारतीय द्वारा भारत के लिए निर्मित होना चाहिए। इस विषय मे महत्वपूर्ण बात भारतीयता है जो अपनी संस्कृति और स्वदेशी की भावना में निहित है। स्वतंत्रता का आन्दोलन इसी भावना से आरम्भ हुआ था किन्तु अन्तिम चरण में इस आदर्श की पूर्ण अवहेलना की गई। वलिदान व्यर्थ हो गये। अंग्रेजों ने अपने दलालों के हाथ मे सत्ता का हस्तांतरण करके हमें नई गुलामी मे डाल दिया। इसी समय इसका इलाज नहीं हुआ तो यही अपना स्वरूप बन जायेगा और हमारी संतति स्थाई रूप से गुलाम हो जायेगी।

आवश्यकता है कि,जाति,धर्म,प्रदेश,भाषा आदि के भेदभाव छोड़कर भारतीयता की पहचान बनायी जाय। सत्य,न्याय,संस्कृति सैन्यशक्ति से सम्पन्न देश अपने आप विकसित होगा। नैतिक समाज तथा नैतिक राजनैतिक संगठन बनाने के लिए देशभक्तों ,समाज सेवियों और विचारकों को सक्रिय होना आवश्यक हैं।

[119]
जीवन-परिचय की उपादेयता

बहुधा,लोग कहते हैं कि किसी के व्यक्तिगत जीवन के विषय मे कुछ नहीं कहना चाहिए,उसके गुणों की चर्चा करनी चाहिए ,अवगुणों की नहीं। यह कथन पूर्वपक्ष है, बहुत जगह इसके विपरीत करना उचित होता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने सदृश ही सबको बनाना चाहता है। अतः किसी को प्रभावित करने में अक्षम लोगों के विषय मे जानकारी लेना अनुपयोगी है किन्तु सामाजिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले लोगों तथा लेखकों और विचारकों का पूर्ण जीवन-परिचय प्रकाशित करना उपयोगी है। इसी से उनके कथनी और करनी का तात्पर्य समझ मे आता है। मनुष्य का अंतःकरण उसके आचरण से प्रगट होता है। आकस्मिक कारण से एकात जगह बिचलित होने पर प्रायश्चित हो सकता है किन्तु बारबार करने या कहने पर वही स्वभाव मान लिया जाता है। जिसका जैसा स्वभाव है ,वह वैसा ही संगठन बनाता है। बड़ी प्रतिष्ठा पाकर लोग कमजोरी को भी अपनी विशेषता के रूप मे सिद्ध करने लगते हैं। यही मिथ्याचार कहा जाता है। यह ध्रुव सत्य है कि कोई व्यक्ति अर्थ और काम के विषय मे दोषी है तो वह चाहे जितना योग्य हो, उसके कार्य से तात्कालिक लाभ भले दिखाई पड़े किन्तु दूरगामी परिणाम उसके प्रभावक्षेत्र- संगठन, देश या मानव समाज के लिए अहितकर होकर रहेगा। अपनी संस्कृति की धुरी धर्म है। अर्थ और काम पर नियंत्रण मे अक्षम धर्म भी पाखंड कहा जाता है। अपने यहां तिलक मालवीय,राजेन्द्र बाबू पटेल जैसे अर्थ और काम के विषय मे निष्कलंक लोगों का देश के लिए अवदान अब भी कीर्तिपताका के रूप मे निर्विवाद है। इस विषय मे विवादित चरित्र या विदेशी संस्कृति से प्रभावितक लोगों को देश का आदर्श नायक नहीं माना जा सकता है। उनसे लाभ कम, हानि अधिक हो रही है। व्यक्तिगत साधना के अलावा अर्थ और काम पर नियंत्रण करना धर्म का उद्देश्य है। ऐसे धर्म से सम्पन्न जननायक, लेखक और विचारक अपने देश और संस्कृति को सुरक्षित रखेंगे। संग्रह और त्याग मे सहायता के लिए, सामाजिक क्षेत्र मे कार्य करनेवाले सभी व्यक्ति का जीवन परिचय प्रकाशित करना जनहित में है।

[120]
अमरत्व का बोध

पुरुष सूक्त मे है– पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। इसकी एक तरह की व्याख्या है कि यह दृश्यमान जगत ब्रह्म का एक चरण है जो नश्वर तथा परिवर्तनशील है। इसमें सुखदुख आदि के द्वन्द्वों से अनेक क्लेश हैं। यह प्रत्यक्ष है। ब्रह्म के तीन चरण अमृत,साश्वत हैं। इनमें सांसारिक क्लेशों का अभाव है। यह अप्रत्यक्ष हैं। इस वेदवाक्य के आधार पर ,ऋषियों ने इन अप्रत्यक्ष रूपों का भी साक्षात्कार करने का उपाय बताया है। उन तीन चरणों को सत्,चित् ,आनन्द नाम से बताया गया है। इनके ज्ञान का उपयोग जीव को अमरत्व का बोध कराने में हो सकता है। आनंद रूप मे सूक्ष्मसृष्टि है जो ब्रह्मा

या प्रजापति के नाम से विदित है। चिद्रूप मे मायोपहित ब्रह्म है जिसे ईश्वर कहते हैं। अपनी शक्ति का ईक्षण करने के कारण वह चित् कहा जाता है। सन्मात्र को चतुर्थ चरण या ब्रह्म कहते हैं। इसके विषय मे नेतिनेति मान कर अनुभूति होती है। इन्ही रूपों को सत्यं शिवं सुन्दर या सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्व व्यापक भी कहते है। सत को काल से अवाधित, महाकाल या सर्वशक्तिमान मानना उचित है। चित् को सर्वज्ञ और शिव कहने में सार्थकता है क्योंकि शिव शब्द की व्याख्या माण्डूक्योपनिषद् के मंत्र सात के भाष्य मे,आचार्य शंकर ने लिखा है– शिवं यतोऽद्वैतं भेदविकल्परहितम्। चित्तत्व अद्वैत का बोधक है। आनन्द को भूमामुख, परम अवकाश अतः व्यापक के साथ सुन्दर भी माना जाता है। सुन्दर कहना उपलक्षण है। इससे नेत्र को सुख मिलता है। पांचों ज्ञानेन्द्रियों के सुख इसी से उपलक्षित हैं। जीव का उद्गमस्थल ऊपर विवेचित तीन अमृत तत्वों में है। वहीं इसका स्याई आवास है। वही तीन,क्रमानुसार इस जीव के सहज स्वरूप हैं। अविद्या के बन्धन से जब कोई मुक्ति का मार्ग न दिखाई पड़े तो अपने सहज स्वरूप का स्मरण करने पर तत्काल शान्ति और अपने अमरत्व का बोध होता है। तब.संसार के क्रियाकलाप स्वप्नवत भासने लगते हैं। अपने सहज स्वरूप का स्मरण करते रहना भवरोग की औषधि है। जौ सपने सिर काटे कोई। बिनु जागे न दूर दुख होई।। स्वरूप का स्मरण ही जागना है।

[121]
सामयिक अनुमान

एक व्यक्ति के दुराग्रह को शान्त करने के लिए ,तुष्यतु दुर्जनः की नीति से हमारे समझदार नेताओं ने भी, दश वर्ष के लिए आरक्षण के रोग को स्वीकार कर लिया था। यही निर्णय सामाजिक कुष्टरोग और प्रशासनिक विषवेलि बनकर अमर हो गई। किसी राजनैतिक दल मे इसे हटाने का साहस नहीं है। इसे समाप्त करने के लिए नैतिकता के लिए समर्पित,देशप्रेमी, सक्षम सामाजिक कार्यकर्ता या संगठन की आवश्यकता है। शुभ काम के लिए आचरण और संकल्प का शुभ होना आवश्यक है।

वर्तमान समय में,आरक्षण और एससीएसटी एक्ट के विरोध की आंथी एकाएक, आगई है। यह आन्दोलन सन्देहास्पद है। इसके पीछे राजनैतिक लाभ लेने के इच्छुक लोगों का हाथ स्पष्ट है। ब्राह्मण क्षत्री एकता,परशुराम,राणा प्रताप आदि का नारा समाज को विघटित ही करेगा। इस आन्दोलन से बहुत बोट लेना संभव है। सत्तापक्ष को बिस्थापित करने मे भी यह कारगर हो सकता है किन्तु अविश्वसनीय और बदनाम लोगों को सशक्त बनाना बहुत अहितकर है। नागनाथ तथा सांपनाथ दोनों से बचनाहै। सवर्णों की एकता के साथ ही दलितों की मानसिकता मे परिवर्तन का उपाय करना उचित कार्यवाही होगी। दलितों को वैशाखी छोड़ने और आत्मसम्मान के साथ आत्मनिर्भर होने की योजना बनानी चाहिए। इसके लिए उन्हें सहायता देनी चाहिए। इस कार्य मे राजनेता और विशेषरूप से दलितों के नेता ही बाधक हैं। सामाजिक जागृति से उनका प्रभाव समाप्त करके देश मे परस्पर सौहार्द की स्थिति बन सकती है। जातिवाद को समाप्त करके

योग्यता का आदर और प्रशासनिक कुशलता की व्यवस्था देशहित मे होगी। इसके लिए नैतिक सामाजिक संगठन के विषय मे प्रबुध्द देशप्रेमियों का प्रयास ही विश्वसनीय उपाय है।

[122]
विद्वद्विनोद

भारत मे दलित की अवधारणा एवं करोना की समस्या,दोनों मे बड़ी समता है। दोनों विदेशियों की देन है और इन्हे समाप्त करना कठिन लग रहा है। दोनों से सामाजिक दूरी बढ़ रही है। दोनों प्राकृतिक संरचना के अंग हैं अतः एकदम से इन्हें नहीं समाप्त किया जा सकता है। एक से एससीएसटी एक्ट और आरक्षण के कारण सामाजिक, प्रशासनिक,आर्थिक समस्याएं तथा अकारण निरोध और जेल जाने की स्थिति है तो दूसरे से भी वही समस्याएं और कर्फ्यू, धारा 144,लाक डाउन, क्वरन्टाइन आदि से निरोध की संभावनाएं बनी हैं। योग्यता और इम्यूनिटी सढ़ाना ही दोनों के लिए सुरक्षाकवच है जिनको महत्व नहीं दिया जारहा है।। दोनों से राजनैतिक हलचल बनी है। दोनों में पुलिस को मनचाही कार्यवाही का अवसर है। इसतरह की कई समानताएं मिलेगी किन्तु बाद में अंतर दिखाई पड़ेगा। सबसे बड़ा अंतर यह है कि एक मे मनुस्मृति फाड़ने काबिल हो गई थी तो दूसरे से वह अनुपालनीय हो गई। करोना तो नियंत्रित होजायेगा किन्तु दलित की समस्या का रोना पता नहीं कब जायेगा। करोना से सजग रहना पर्याप्त है,भयभीत होने से हानि है। दलित समस्या भयदायक है। इसे समाप्त करने के लिए प्राथमिकता दी जाय। इसके डाक्टर नैतिक समाजसेवी ही हैं। इन लोगों की सलाह लेना आरंभ करें।

[123]
आश्रम व्यवस्था मे संन्यास

जीवेम शरदः शतम् के साथ ही श्रवण-शक्ति,वाक्-शक्ति आदि इन्द्रियों तथा अदीन मनः-शक्ति की कामना मे ही जीवन की पूर्णता है। यही वैदिक विधान है। तुलसी दास ने मानस मे चौदह तरह के शवसम जीवित प्राणियों को गिनाया है। ऐसा जीवन मृत्यु से भी अधिक भयंकर है। वृद्धावस्था का वास्तविक जीवन-काल सुकृति का फल है। इसी काल मे संन्यास की साधना निर्विघ्न हो सकती है। पूर्व के तीन आश्रम इसी की तैयारी हैं। प्रथम मे आगे के तीनों आश्रमों की योग्यता,द्वितीय मे अर्थ-काम तृतीय मे धर्मसंचय प्राप्त करने के बाद चतुर्थ मे वैराग्य के अभ्यास के लिए चार आश्रम हैं। संन्यास एक आश्रम ही नहीं, जीवनशैली है। इसका प्रधान लक्षण वैराग्य है। इसी के अभाव मे आजकल के संन्यासी व्यवसायी होगए हैं। अतः अविश्वसनीय, निन्दनीय और संस्कृति के लिए कलंक बन गए हैं। लिखा भी है-सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु विराग संन्यासी।। ऐसे पाखंडी संन्यासी से गृहस्थ ही बहुत अच्छा है। अल्पायु होने मे ही कल्याण है। अस्तु निराश होने के बजाय आगे भी विचार संभव है। आश्रम-व्यवस्था देने वाली हमारी संस्कृति धन्य है। इस आश्रम मे दूसरों का भार नहीं और दूसरे पर भार नही रहता है।

दोनो के अभाव मे वृत्ति एकमुखी रहती है। जीने या मरने का विचार समाप्त होने से निर्भयता रहती है। पितापुत्र एवं परिवार से संबंध बिगड़ने का अवसर नहीं आता है। यह अब भी संभव है। स्वर्गीय प्रोफेसर विश्वभर शरण पाठक,भूत पूर्व कुलपति गोरखपुर विश्वविद्यालय,ने गृहस्थाश्रम में संन्यास का उदाहरण अभी हाल में ही प्रस्तुत करके दिखाया। अपनी सम्पत्ति भाइयों को दे दिया। अपने सम्पन्न सालेबाबू के आग्रह को अस्वीकार करके, उनकी सहायता न लेकर, कष्टमय जीवन यापन करते रह गए। हमारी संस्कृति अब भी जीवन्त है। आध्यात्मिक एवं मुक्तिपरक जीवन का संकल्प रखने वाले के लिए वैराग्ययुक्त सन्यासाश्रम परम साधन है। यह हमारी विशेषता है। इस संस्कृति की रक्षा से मानवता जीवित रहेगी।

[124]
संन्यास की आचरणीयता

यह स्वीकार्य है कि स्मृतियों में विहित ढंग से संन्यास आश्रम मे रहना,आजकल,कई कारणों से संभव नहीं है। असमय मे प्रयास करने पर मिथ्याचार और नया सांसारिक प्रपंच ही आक्रांत कर लेता है। आश्रम बदनाम होजाते हैं। इसीलिए इस आश्रम को कलिवजर्य बताया गया। ऐसा होने पर भी संन्यास की महिमा कम नहीं हुई है। लिंग और आश्रम नहीं,एक जीवनपद्धति के रूप मे,संन्यास का महत्व अब भी उतना ही है। अपनी व्यवस्था के अन्तर्गत अपूर्णाङ्ग संन्यास भी निन्दनीय नहीं है किन्तु वैराग्य का होना, असंग्रह आदि लक्षण अनिवार्य है। पहले भी यह नीति मान्य रही है। लिखा है-

बनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् गृहेऽपि वैराग्यसुखं मनीषिणाम्।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवृत्तः,निवृत्तरागस्य गृहं तपोतनम्।।

सन्यासाश्रम की कठिनाइयों को देखते हुए, भगवान व्यास ने वैदिक कर्मयोग का एक नया रूप, गीता में प्रस्तुत किया। यं सन्यासमिति प्रोक्तं योग तं विद्धि पाण्डव, यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते.. जैसे कई स्थलों पर कर्मयोग के माध्यम से संन्यास तक का फल मिलने की बात कही गई है। सूक्ष्म विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि कर्मयोग के माध्यम से सहज रूप से संन्यास या ज्ञानयोग में प्रवेश होता है तब अकर्म की स्थिति प्राप्त हो जाती है। कर्मयोग एक सरल और व्यवहार्य मार्ग है। व्यास के बाद मी परम्परागत संन्यासी होते रहे हैं। आज के छः सौ वर्ष पहले मधुसुदन सरस्वती जैसे प्रभावशाली संन्यासी हुए हैं। अब भी होना संभव है। संन्यास को एक जीवनपद्धति के रूप मे स्वीकार किया गया है। वैराग्य,अकामता जैसे गुणों का आधान इसके लिए आवश्यक हैं। समत्वबुद्धि की साधना से सांसारिक जीवन के क्लेश समाप्त होजाते हैं। यह सत्य है कि अधम कोटि के लोग केवल दोष देखते हैं,व्यवहार में कुशल लोग गुण और दोष दोनों देखते हैं,धर्म का संचय करनेवाले केवल गुण देखते हैं और संन्यासी गुणदोष दोनों पर ध्यान न देकर समत्वबुद्धि रखता है। जीवनशैली के रूप मे संन्यास अब भी ग्रहणीय है। हमारी संस्कृति में विहित यह परम श्रेय का मार्ग अब भी प्रशस्त है।

[125]
पितृ-दिवस

हमारी परम्परा मे जन्मदिवस या मृत्युदिवस के रूप में पिता का विशेष स्मरण करने की व्यवस्था है। बहुधा, मुझे पिता का स्मरण होते ही,कुलपरंपरा का स्वाभिमान, सत्यनिष्ठा, न्याय,निर्भयता आदि के अवदानों का स्मरण स्वाभाविक रूप से हो जाता है। वे अपने पास बैठाना अवश्य चाहते थे किन्तु कोई कष्ट या समस्या कभी नहीं बताते थे। पूछने पर सब ठीक है हो,कहकर प्रसन्न रहते थे। आज स्मरण होने पर कुछ लिखकर ही उनके चरणों में श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

[126]
चिन्ता और चिन्तन

चिन्ता एक मनोविकार है,चिन्तन एक बौद्धिक क्रिया है। एक मे मन की प्रधानता होती है बुद्धि दुर्बल रहती है.दूसरे मे बुद्धि प्रधान होती है, मन सहायक होता है। दोनों में सकारात्मक उपाय या निर्णय न मिलने पर निराशा और अवसाद होते हैं। चिन्ता मे हानि का स्मरण या कुछ हानि का भय रहता है जबकि चिन्तन से कुछ लाभ की आशा होती है। चिन्ता से चिन्तन मे बाधा होती है और चिन्तन से चिन्ता को दूर किया जा सकता है। चिन्ता का कारण भूतकाल में हुई अपूरणीय क्षति होने पर उसे छोड़ना ही हितकर है तस्मादपरिहार्यर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि-गीता। साध्य विषय पर चिन्ता से भी लाभ संभव है। एक आवश्यकता है तो दूसरा आविष्कार है। बड़ेबड़े निर्माण और आविष्कार आवश्यकता की पूर्ति और चिन्ता से मुक्ति के ही लिए हुए हैं। राक्षसों के उपद्रव से विश्वामित्र को चिन्ता हुई। तब चिन्तन द्वारा उपाय मिला—

गाधिसुवन मन चिन्ता व्यापी।
हरि बिनु मरिहिं न निसियर पापी।।
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा।
हरि अवतरेहु हरन महि भारा।।
एही मिस देखहु पद जाई।
करि विनती आनहुं दोउ भाई।।

इस तरह समाज के कल्याण का मार्ग चिन्तित होने पर ही मिला। साध्य विषय पर, सकारात्मक चिन्ता लाभकर है। चिन्तन भी विषय के शुभ या अशुभ होने के आधार पर वैसा ही फल देता है। रावण ने चिन्तन करके सीता के हरण की योजना बनाई और सर्वनाश को प्राप्त किया। जगत की नश्वरता देखकर वैराग्य और मुक्तिमार्ग की खोज और आत्महत्या दोनों संभव है, लाभहानि में भेद स्पष्ट है। अतः दोनों के उपयोग में विवेक की आवश्यकता है। प्राकृतिक आपदा के समय चिन्ता के बजाय ओषधि खोजने मे चिन्तन और प्रयोग करना सकारात्मक चिन्तन है। भोजन,आचार व व्यवहार मे आवश्यक परिवर्तन करना भविष्य के लिए भी निरोध का स्थाई उपाय होता है। संस्कृत से प्राकृत

बनकर हम संकटग्रस्त होजाते हैं । संस्कार और संस्कृति का स्मरण रखने की शिक्षा लेना और पालन करना उचित उपाय है।

[127]
व्यास-पूर्णिमा

आज आषाढ़ मास की पूर्णिमा है। इसे गुरुपूर्णिमा भी कहते हैं। आचार्य देवो भव- यह मान्यता रही है। शिक्षा द्वारा जगद्व्यापार का निर्वाह एवं अविद्या का नाश करने की योग्यता देनेवाले आचार्य श्रद्धेय और सम्माननीय होते हैं। तृतीय या चतुर्थ आश्रम मे प्रवेश के समय एक विशेष दीक्षागुरु की आवश्यकता होती थी। इसके लिए श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाना पड़ता था। इन्ही गुरु के विषय में कहा है गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरर्देवो महेश्वरः, गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः। ऐसे योग्य गुरु आजकल दुर्लभ हैं। गुरुर्णिमा पर दोनों प्रकार के गुरुओं के सम्मान की प्रथा है। प्रचार और पाखंड के बल पर,दूसरे कोटि के गुरु ही मुख्य हो गए हैं और सर्वसुलभ हैं। इस विषय मे विवेक के लिए कुछ तथ्य दिये जारहे हैं। ऊपर लिखे गए गुरुर्ब्रह्मा से आरब्ध श्लोक का अर्थ यह नहीं है कि, विष्णु, महेश्वर और ब्रहा नहीं ,केवल गुरु ही उपास्य हैं। सही अर्थ है कि इन देवताओं की उपासना से जो फल मिलता है वह सब केवल कृतार्थ गुरु को समर्पण और सेवा से सुलभ है। जिसके पास जो कुछ है,उससे अधिक वह किसी को नहीं दे सकता है। अतः गुरु का समर्थ होना आवश्यक है। अन्यथा-अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः,की दशा होगी। मुकदमा लड़नेवाले, व्यवसायी,संग्रही,कामी, पाखण्डी गुरुओं के बहकावे से सतर्क रहें। समर्थ गुरु न मिलने पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि मे किसी की उपासना गुरुरूप मे करना श्रेयस्कर है। आजकल यह सर्वसुलभ और निरापद है।

ऊपर संदर्भित श्लोक का अर्थ यह भी है कि मूलरूप से ब्रह्मा आदि चार गुरु हैं। इन्हीं की कृपा से मनुष्य मे गुरुता का आधान होजाता है। अतः गुरु की खोज मे भटकने की आवश्यकता नहीं है। लोभी और अहकारी को सद्गुरु नहीं मिल सकता है। योग्यता बढ़ाने पर,सर्वज्ञ गुरु स्वयं अपने पास बुला लेता है, गुरुता देदेता है।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।।
यमाश्रितोऽहि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र बन्द्यते।
पुनः–स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे।।

[128]
राजमद

राजमद एक भयानक मनोरोग है जो व्यक्ति और समाज दोनों का नाश करता है। यह, विवेकशक्ति मे दरिद्र लोगों को तत्काल और निन्दनीय ढंग से प्रभावित करता है और घोर संकट पैदा करता है। प्रजापति दक्ष, नहुष, बेन आदि की कथा प्रसिद्ध है। सद्दाम, भुट्टो आदि की दुर्गति, हाल की घटनाएं हैं। ईश्वरीय विधान का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है। प्रकृति का प्रकोप होते ही सारी शक्ति का विस्तार गन्धर्वनगर की तरह नष्ट हो

जाता है। कोई भी अदण्ड्य नहीं है। अतः अनीति से परहेज न करनेवाला मूर्ख कहा जाता है। मनुष्य की भावना ही महत्वपूर्ण है, वही मूर्त रूप ग्रहण करती है। एक गलत निर्णय सारा भाग्यचक्र विपरीत कर सकता है .फिर उसका निराकरण असंभव हो जाता है। अकाट्य नियम रहा है– जो जस करइ सो तस फल चाखा। भ्रम मे न रहें,भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। अतः रागद्वेष से रहित रहकर, राजधर्म को जानना और मानना ही पड़ेगा।

[129]
न्यायपालिका की ज्ञान-क्षमता

यह समस्या नित्य देखी जा रही है कि जो बातें जनता के सामने प्रचारित हैं उन्हें भी न्यायालय नहीं जान पाता है। वकील या साक्षी द्वारा दिखाने और सुनाने से ही उसे व्यवहार्य ज्ञान होता है। इस समय सत्यवादी साक्षी दुर्लभ हैं। गुण्डों के आतंक का प्रभाव सभी देख रहे हैं। ईश्वर-अल्ला,गीता-कुरान किसी की शपथ लेने का कोई अर्थ नहीं है। जिस समय साक्ष्य का कानून(इविडेंस ऐक्ट)बना था.तब से अनेक तरह के परिवर्तन एवं नैतिकता का पतन हो चला है। अतः,सन्देह का लाभ पाकर अपराधी भी मुक्त हो जाते हैं। किसी भी हालत मे अपराधी को दण्डित करने की व्यवस्था होनी ही चाहिए। न्यायिक प्रक्रिया से भिन्न विधि से दिया गया दण्ड भी सन्देहास्पद होता है। यह अराजकता है। पुलिस और नेताओं को गुण्डा बनने से रोकना भी न्यायालय से ही संभव है। गुण्डे, जातिवादी तथा दुराग्रही ही माननीय और मंत्री बने,यह अनीति को बढाने वाली बातहै। इसका संत्रास दिनोदिन बढ़ रहा है।

ऐसी स्थिति मे न्यायालयों को जबाबदेह तथा और सशक्त बनाने केलिए साक्ष्य और आदेश के नियमों मे भारी परिवर्तन अपेक्षित हैं। पारिस्थितिक-साक्ष्य (सर्कमस्टांसियत्न इविडेंस) को अधिक महत्त्व देना कारगर हो सकता है। न्यायविद लोग इस तरह की पूरी व्यवस्था दे सकते हैं। मानवाधिकार आदि बाधाओं को देश की परिस्थिति के अनुसार ही स्वीकार किया जाना उचित है। कानून का राज्य बनाये रखने के लिए न्यायपालिका को सक्षम और ईमानदार बनाना तथा उसका ज्ञानश्रोत बढ़ाना आवश्यक है।

[130]
स्वच्छ समाज एव कुशल प्रशासन

अपने देश मे, समाज एवं प्रशासन की शुद्धि के लिए अनेक उपक्रम किए जा रहे हैं किन्तु सर्वत्र मिथ्याचार ही प्रभावी है। 'न पापफलमिच्छन्ति,पापं कुर्वन्ति यत्नतः'-महा भारत में लिखित यही बात चरितार्थ होरही है। ऐसे भ्रष्ट कार्यक्रमों की सूची लम्बी है। इस विषय मे पुस्तक के रूप मे नैतिक सामाजिक/राजनैतिक संगठन एवं भारतीय संस्कृति एवं संविधान नामक दो लेखन व प्रकाशन हमने किया है। फेस बुक में सैकड़ों सन्देश प्रकाशित हैं जिनसें दो पुस्तकें बन सकती हैं। सब अरण्यरोदन नहीं रहेगा । कभी इनका कार्यान्वयन होगा। वर्तमान परिस्थिति मे,सुदूर तक ,व्यवस्था में सुधार की आशा नहीं है। लगता है तिलक,सुभाष,आजाद,भगतसिंह आदि को पुनः आने का समय आगया ह। उन

लोगों को स्वर्गसुख से वंचित न किया जाय,उनके लिए यही श्रद्धांजलि होगी। समाज और तथाकथित जननायक सावधानी से अपने भविष्य की रक्षा करें। नैतिकता के आचरण का आरंभ तत्काल आवश्यक है।

सुधार के लिए पदक्रम मे दो बातें प्रथमतः अवधेय हैं । प्रथमतः एससीएसटी एक्ट,आरक्षण, तुष्टिकरण जैसी कटिया (मछली पकड़ने की कील से वोट और सत्ता की व्यवस्थाओं की मछली को फंसाना बंद किया जाय। दूसरे ग्राम प्रधान को कटिया बनाकर,सेक्रेटरी,बीडीओ,सीडीओ आदि उच्चस्तरों तक के लिए सरकारी धन को बांटने की सुविधा भी बन्द हो । अष्टाचार और गाँवो का कलह बन्द करने के लिए मनरेगा आदि मे या किसी तरह ग्रामप्रधान के हाथ मे आर्थिक अधिकार न दिया जाय। सभी दल सत्य और न्याय की दृष्टि से, नंगे दिखाई पड़ रहे हैं। समस्या को समूल समाप्त करने के लिए संविधान मे आवश्यक सशोधन किया जा सकता है। पुनि पछितैहो अवसर बीते—संत तुलसी की वाणी, सद्यः सावधान होने को कहती है।

[131]
राजकीय सम्मान और पुरस्कार

अपने संविधान मे राजकीय उपाधि देने का निषेध करने के लिए अनुच्छेद अठारह है। पद्म पुरस्कार आदि उपाधियां इस अनुच्छेद का उल्लंघन करती हैं। अतः, इस विषय मे सुप्रीम कोर्ट में याचिका की गई थी। शासन की प्रबल पैरवी के कारण न्यायालय ने मध्य-मार्ग अपनाकर आदेशित किया कि केवल योग्यता के आधार पर यह सम्मान दिये जाय, पूंजीपति या अन्य दबाव बनाने वालों को उपाधि वितरित न की जाय। किन्तु इस आदेश से शासन को स्वार्थपरक निर्णय लेने से रोका नहीं जासका। फलतः इनका दुरुपयोग हो रहा है।

पुरस्कार के लोभ मे,अपने यहाँ के विद्वान और विचारक भी ,शासन के द्वारा किये गये असत्य, अन्याय आदि का विरोध करने के लिए मुखर नहीं होते हैं। इस तरह भ्रष्ट आचरण का प्रसार प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। अतः शासन को स्वतः इन उपाधियों को बन्द कर देना चाहिए। इसके साथ ही, इनके धारकों का सम्मान करने के लिए ,उपाधि नहीं बल्कि योग्यता को आधार बनाया जाय। इससे अयोग्य धारकों का उपहास होने लगेगा। विद्वान ,विचारक और प्रबुद्ध लोगों के निष्पक्ष विचारों का समाज पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

अपने,एक कोटि के साथियों को बिकते हुए और गुलाम होकर ,परेच्छा के अनुसार, विभिन्न दलों के पक्ष में, भाषण देते,चाटुकरिता करते और भ्रष्टाचार की गन्दी नदी मे अवगाहन करते हुए या दूसरे कोटि के कुछ साथियों को निराश होकर तटस्थ बैठे देखकर लगता है,अकेला रहने की आदत डालनी चाहिए। शायद इसी के लिए करोना कहर आया है। फिर भी, अकेला ही,चरैवेति चरैवेति।।

[132]
स्वाधीनता मे सुरक्षा एवं स्वाभिमान

सर्व परवशं दुखं सर्व आत्मवशं सुखम्– इस नीति की शिक्षा, हमारी संस्कृति में पुरातन काल से उपलब्ध है। अपने सहज स्वभाव से प्राप्त गुणों और योग्यता के सहारे रहने मे व्यक्ति का स्वाभिमान सुरक्षित रहता है। विद्या, तपस्या और त्याग, पराक्रम, धन या कौशल और सेवा इन चार के आधार पर, स्वाधीन रहने की परम्परा इस संस्कृति की विशेषता रही है। इन सब पर मानवीय नैतिकता का अंकुश रहता था। इस अंकुश का प्रभाव बनाए रखने केलिए ब्राह्मण और क्षत्री ,अग्नि और वायु की तरह, परस्पर सहयोग से,स्वधर्म का पालन करते रहे। अब उस स्थिति को वापस लाना तो कठिन है किन्तु अंशतः पालन करना सभव है।

ब्राह्मणत्व ही ब्राहमण को सुरक्षित रख सकता है। सतयुग में जमदग्नि,परशुराम आदि, त्रेता मे वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि,द्वापर मे व्यास, द्रोणाचार्य आदि कलियुग मे चाणक्य, शंकराचार्य, तिलक आदि से ब्राह्मणत्व का लक्षण ज्ञातव्य है। इसीतरह, इतिहास से विभिन्न वर्गों का लक्षण जाना जासकता है। अपने अंदर उपस्थित लक्षणों और योग्यता के अनुसार अपना स्वरुप स्वीकार करने मे ही स्वाभिमान सुरक्षित रहेगा,अन्यथा मिथ्या अहंकार से होरहे सामाजिक विघटन को रोकना असंभव है। शुद्ध जाति और निःस्वार्थ संगठन हैं नहीं। तथाकथित जाति के आधार पर संगठन और दूसरी जाति का विरोध,इस समय स्पष्ट है। जातीय संगठनों पर रोक लगाना तथा इस कुत्सित जातिवाद का नग्ननृत्य करने वाले पदासीन लोगों का वहिष्कार करना स्वाभिमान की सुरक्षा में सहायक होगा। जातिवाद की नीव गहरी है। स्वतंत्रता के उपक्रम के समय ही अंग्रेजों ने इसका बीजारोपण कर दिया था। शासन मे विकास का संकल्प है तो योग के पहले क्षेम पर ध्यान देना चाहिए। भ्रष्टाचार और अनीति के वृक्ष को काटना पड़ेगा। इन्हीं की गन्दी नाली में विकास का सम्पूर्ण जल बह जाताहै। सुनीति होने पर विकास होगा । तभी स्वाधीनता और स्वाभिमान के साथ सुरक्षित रहना और रामराज्य का संकल्प पूरा होगा।।

[133]
स्वतंत्रता की सार्थकता

राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ मात्र स्वदेशी राजा या दलीय संगठन का शासन नहीं है। वह भी अनैतिक होकर जनता को परतंत्र बना सकता है। स्वतंत्रता का तात्पर्य है व्यक्ति और समाज की संतुष्टि और सुखसमृद्धि। इसके लिए समानता, सुरक्षा, न्याय, उपासना की सुविधा,संस्कृति की सुरक्षाआदि के साथ आर्थिक सम्पन्नता आवश्यक हैं। इतिहास तथा वर्तमान में स्वतंत्रता की सार्थकता का आकलन इस दृष्टि से संभव है।

मुगल शासक कामाचार और धार्मिक कारणों से ,अत्याचार करते हुए हमें गुलामी का अनुभव कराते रहे। अंग्रेज अपनी सांस्कृतिक और बौद्धिक श्रेष्ठता के अहंकार मे तथा आर्थिक शोषण करते हुए हमें पराधीन बनाये थे। यह दोनों शासक, असमान व्यवहार

करने के कारण ही भारतीय लोगों के लिए, अस्वीकार्य होगये थे। स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ,अंग्रेजों को हटाने के लिए नहीं बल्कि, समानता की मांग को लेकर हुआ था। ऐसा न होने पर,बाद मे पूर्ण स्वतंत्रता के लिए तिलक आदि ने आन्दोलन आरंभ किया। इन दोनों प्रकार की गुलामी को हटाने मे हम सफल होगये,यह संतोष का विषय है। अब वर्तमान प्राप्त स्वतंत्रता परीक्षणीय है।

जिस समानता, न्याय और सुरक्षा के लिए स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है,वह अपने देश में अब भी दुर्लभ है। इनके अभाव मे, भ्रष्टाचार के कारण तथा जातिवाद आदि से विषम परिस्थिति है। आर्थिक दृष्टि से भी मध्यमवर्ग, संत्रस्त है। चतुर्दिक समस्याओं से घिरे देश में वोट और सत्ता की राजनीति का नग्ननृत्य हो रहा है। इस तरह व्यक्ति,समाज और देश तीनों गुलाम ही बने रह गए हैं। इस गुलामी को हटाना, पिछली लड़ाइयों से भी अधिक कठिन है क्योंकि इस समय हम स्वयं आपस मे युद्धरत है। लेकिन असाध्य कुछ नहीं होता है।

समस्या के निराकरण का मूलमंत्र समानता, न्याय, योग्यता का सम्मान आदि के रूप मे पूर्व निर्धारित है। इस दिशा में चलने के लिए कृतसंकल्प व्यक्ति या संगठन,सभी बाधाओं को दूर करके देश में सार्थक स्वतंत्रता की व्यवस्था कर सकता है। प्रबुद्ध लोगों को इस विकट संग्राम में सामाजिक सौमनस्य और नैतिकता की शिक्षा देकर,योगदान देना होगा।

[134]
नारी का सम्मान

किसी भी सामाजिक विषय पर विचार करना ,राजनीति-निरपेक्ष संभव नहीं रह गया है। आजकल यह विषय नारी-सशक्तीकरण के नाम से, राजनीति का प्रमुख अंग है। पुरुष, परिवार, कुलपरंपरा, संस्कृति और समाज की सुरक्षा के लिए नकि इन्हें बरबाद करने लिए नारी-सशक्तीकरण होना चाहिए। राजनैतिक हस्तक्षेप से दलित के द्वारा सवर्ण का या नारी के द्वारा पुरुष और उसके कुल की मर्यादा का हनन अन्याय है। सशक्तीकरण किया जाय किन्तु दुर्भावना से नहीं । उसका सदुपयोग होना चाहिए।

यहा लाख मे एक अपवाद को ध्यान मे न रखकर,सामान्य नारी के विषय में लिखा जा रहा है। हमारी संस्कृति मे नारी का सर्वोत्तम सम्मान गृहिणी-पद,घर की मालकिन, है। पुत्री के मातापिता, सासश्वसुर तथा संबंधी सबका कर्तव्य है कि नारी को गृहिणी पद के योग्य अवश्य बनायें। अपनी योग्यता के अनुसार,कुलांगना की तरह रहकर अन्य सम्मानित पद पाने का अवसर भी दिया जाय। नारी का किसी काम से सुरक्षित ढंग से अकेले जाना बुरा नहीं है किन्तु अकेले घूमना निन्दनीय है। इसकी स्वतंत्रता के द्वारा सशक्तीकरण करण भारतीय नारी की मर्यादा के विरुद्ध है। नारी के भारतीय बने रहने पर ही यहां की संस्कृति सुरक्षित रहेगी। इस मर्यादा का उल्लंघन करने पर नारी दोनों कुलों को ऐसे नष्ट करती है,जैसे बाढ़ी नदी दोनों किनारों को काटती है-कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी कूलवयं क्षुब्धजला नदीव।

दहेज उत्पीडन, घरेलू हिंसा,उत्तराधिकार के नियम आदि के द्वारा समस्याएँ, जैसे – संस्कृति व परिवार उच्छिन्न हो रहे हैं.वृद्धों की दुर्दशा है,हत्याएं होरही हैं आदि,-बढ़ रही हैं। यह विषय राजनैतिक नहीं,सामाजिक है। शासन का हस्तक्षेप अनुचित है। हम अपनी सांस्कृतिक मान्यताओं की ओर लौटे। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता– यह सदा सत्य है। कालिदास ने भी कण्व ऋषि के मुख से कहलाया है– सुश्रूसस्व गरून् ------- यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयः वामाः कुलस्याधयः। अतः गृहिणीपद पर नारी को प्रतिष्ठित करने मे सहयोग ही उसका सशक्तीकरण है। इसी में उसका सम्मान है।

[135]
समस्याओं की सुनामी का समाधान

सागर में लगी आग तो बुझायें कैसे,कुएं में पड़ी भांग तो बचायें कैसे। हम स्वयंभू बादल नहीं हैं और पानी तो हमें भी पीना ही पड़ेगा। तो-चल रे मन जंगल की ओर, ऐसा विचार स्वाभाविक है। लेकिन.जंगल मे भी दुर्गा सप्तशती मे वर्णित राजा सुरथ और वैश्य समाधि की तरह चिंताएं घेर सकती हैं। इस समय वहां मेधा मुनि का मिलना असंभव है। अगति स्पष्ट है। तो– घर मे ही साधना से मेधा की उपासना करें अर्थात बुद्धि के प्रतीक ब्राह्मणत्व को जाग्रत करें। इसी से वैश्य को ज्ञान और राजा को, कोला विध्वंसियो की पराजय के साथ, उसका सामाज्य प्राप्त करा सकते हैं। तभी, निजनिज धर्म निरत श्रुति रीती के लक्षण वाले रामराज्य की आशा की जासकती है। विधाता ऐसा ही सोचने की कृपा करें। सत्य है—

अवश्य भव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा।
तृणेन वात्येव तयानुगम्यते जनस्य चित्त्येन भृशावशात्मना।।

अर्थात् आंधी मे तिनके की तरह समस्त प्राणी विधाता के संकल्प का ही अनुगमन कर रहे हैं। संसार में विधाता ही बुद्धि के रूप में प्रगट होते हैं। बुद्धौ शरणमन्वच्छ-गीता का संदेश है। इससे सफलता मिले या नहीं लेकिन सुखशांति अवश्य मिलेगी।।

[136]
नई शिक्षानीति

बड़ेबड़े विद्वान इस पर बोल चुके हैं। तदपि कहे बिनु रहा न कोई -यह स्वभाव है। अतः मैं भी कुछ कहना चाहता हूं– नई शिक्षा नीति बनी है। चतुर्दिक विकास की आशा प्रचारित हो रही है। किन्तु इसमे एक मूलभूत कमी है जिसे दूर किए बिना सब प्रयास निष्फल रहेगा। कमी को दूर करने के लिए चरित्र-निर्माण की शिक्षा अनिवार्य है। इसके बिना सारी शिक्षा कुशिक्षा में परिणत होजाती है। फूटे पात्र मे जल नहीं टिक सकता। विकास का सारा प्रयास, अष्टाचार, कुनीति आदि के ब्लैक होल में समाहित हो रहा है। इससे मुक्ति आवश्यक है।

सबसे सरल और स्वाधीन उपाय है कि हम मैकाले के पहले वाली शिक्षानीति से कुछ अंश ग्रहण करें। प्राथमिक स्तर पर,अनिवार्यतः,सब को साक्षर बनाने और नैतिक

शिक्षा देने की व्यवस्था करना उपयोगी है। अतः गुरुकुल परम्परा के विद्यालय प्रत्येक गांव और मुहल्ले में स्थापित हो। उच्चतर शिक्षा में भी नैतिक शिक्षा और उसका प्रायोगिक स्वरूप समझाया जाय। इससे मनोरंजन के माध्यमों,सामाजिक संचार के साधनों तथा शासन और नेताओं में व्याप्त भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने वाले नव युवक पैदा होंगे। सुशिक्षानीति से सुपरिणाम अवश्यंभावी है।

[137]
जीवनयात्रा की दिशा

जन्म के समय से ही,हर बालक के मातापिता.परिस्थिति के अनुकूल न होने पर भी,भाग्य के सहारे,उसे सुखी और समृद्ध होने इच्छा एवं आशा करते हैं। अपनी आकांक्षाओं को पूरी करने के लिए.वह स्वयं हठ करता है। सफल होने की संभावना सबके लिए है भी। आगे के जीवन में ऐसा होने के लिए कम लोग ही प्रबंध कर पाते हैं। कहीं न कहीं ऐसी घटना होजाती है जो पूरे जीवनयात्रा की दिशा का निर्णायक हो जाती है। कवि मैथिली शरण गुप्त की लाइन बड़ी प्रासंगिक है– किन्तु वही चूक फिर जिसके सुधार का रहता न उपाय वही हूक बन जाती है,और जनजीवन बिगड़ जैसा जाता है।।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवनयात्रा में ऐसी घटना का स्मरण होगा जिससे वह पतन से सुरक्षित रह सका या जिन्दगी नारकीय हो गई। अनियंत्रित कामवासना, अर्थलोलुपता या अविवेकपूर्ण अहंकार के कारण पतन के मार्ग पर चलने की मजबूरी होजाती है। बीस वर्ष की उम तक इन कारणों के उपस्थित होने से बचाव करना मातापिता अभिभावक तथा अध्यापक की प्राथमिक जिम्मेदारी है। स्वाभाविक गुणों को सुरक्षित रखने और कुसंग से बचाने केलिए दूसरा सहायक नहीं मिलेगा। आज के समाज से यह आशा नहीं है।

अतः,दश-बारह वर्ष तक मे ही,बालक-बालिका मे शौचाचार,कामाचार की पवित्रता,जीवन के हितकर और प्रशंसनीय मूल्यों का ज्ञान दृढ़ कर देना चाहिए। इसके अभाव मे किशोरावस्था मे बहकाना और उसका शोषण करना संभव होता है। यात्रा की दिशा भी, इस समय के बाद निर्धारित की जाय। लगभग बीस वर्ष की आयु तक,विशेष व्यवस्था अपेक्षित रहती है। कामाचार, चरित्र के पतन और भ्रष्टाचार के लिए कुख्यात क्षेत्र मे प्रवेश करने से मनाकरके,सम्माननीय क्षेत्र में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया जाय। राष्ट्र का निर्माण ऐसे विद्यार्थियों से ही संभव है। इसे कार्यान्वित करने के लिए शिक्षानीति में उचित व्यवस्था होनी चाहिए। भौतिक विकास के पहले चरित्र और नैतिकता कि आधारशिला आवश्यक है।

[138]
विकास का नैतिक उपाय

एक प्रचलित मत है कि देवगुरु वृहस्पति ने दानवों को पराजित करने के लिये चार्वाक दर्शन का उपदेश करके,उन्हें अनैतिक बना दिया था। सरल और निम्नगामी उपदेश के ग्राहक तुरन्त मिलते हैं। आज के विचारकों ने नैतिकता की परिभाषा ऐसी बना

दिया है जिसमें योग्यता, स्वावलंबन, स्वाभिमान आदि का मूल्य नहीं रह गया है। इसके समर्थक बहुत हैं। समानता के लिए अनैतिक उपायों का प्रयोग होने से विकास की जगह विनाश का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। देश की प्रतिष्ठा इस बात से नहीं बढ़ेगी कि विश्व के सर्वाधिक अरबपति यहां हैं और विश्व का सबसे धनी व्यक्ति यहां का है। ऐसा होने के साथ यह भी होगा कि विश्व में सर्वाधिक विपन्न और दरिद्रतम व्यक्ति भी यहीं हैं। अतः नैतिकता की सही परिभाषा स्वीकार करनी पड़ेगी। नैतिकता की सही शिक्षा के लिए विषद विचार पहले से उपलब्ध हैं। इस समय देश और व्यक्ति को स्वावलंबी तथा विकसित बनाने के लिए प्रथम आवश्यकता योग्यता का आदर और पक्षपात तथा अनीति का निराकरण करना है। इसके साथ ही अन्य कार्यक्रमों को चलाया जा सकता है। राजनीति पर योग्य तथा ईमानदार लोगों का नियंत्रण होने पर सफलता अवश्यंभावी है।

[139]
गन्धर्व नगरी

मनोरथों का अविरल क्रम स्वाभाविक है। मनोरथानामगतिर्न वियते– कालिदास। दुष्टों के भाग्य मे भी किसी आकस्मिक पुण्य के प्रभाव से,कुछ अद्भुत सफलता मिलने की संभावना होती है। सफल होने पर,अपने स्वभाव के कारण, वे अपने को ही नैतिक और आदर्श व्यक्ति सिद्ध करना चाहते हैं और अनन्त मनोरथों की पूर्ति की व्यवस्था करने लगते हैं। पूर्वजन्म के किसी पुण्य का फल न समझाकर, अपने दुराचरण को ही वे सफलता का कारण मान लेते हैं। प्रारब्धजन्य फल की अवधि समाप्त होने पर उन्हें असफलता और पराजय मिलने लगती है। इस दशा को प्राप्त होने पर, वे और अधिक अनीति के द्वारा सुरक्षित रहने का प्रयास करते हैं। परिणामतः, घोर पराजय के साथ अपयश को छोड़कर, कंस की तरह वे यहां से बिदा होते हैं। उनकी सारी रचना, गंदर्भनगरी की तरह , समाप्त होती है। रावण के अन्तिम समय के विषय मे तुलसीदास ने लिखा है-

विफल होहिं रावण सर कैसे।
खल के सकल मनोरथ जैसे।।

दुष्टों की यही नियति बनती है। जब किसी व्यक्ति की योजनाओं का कुपरिणाम निकलने लगे तो समझ लेना चाहिए कि उसका समय समाप्त है। उनकी अनीति के कारण धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। प्रतीक्षा करना भी धर्म है। सन्मार्ग के पथिक ,धैर्य के साथ, अपनी नैतिकता के सहारे चलते रहे तो दुष्टों की गन्धर्वनगरी लुप्त हो जायेगी। चरैवेति, चरैवेति।।

[140]
जीवेम शरदः शतम्

'यमसेना की विकट ध्वजा अब जरा दृष्टि मे आती है, करते हुए युद्ध दुष्टों से देह हारती जाती है।। ' किन्तु देह के शिथिल होने पर भी,मन और बुद्धि के बल पर

संजीवनी शक्ति बनी रहती है। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। वेद का आदेश है– कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत् शतं समाः। यहां सौ वर्ष तक कार्य करने का यह भी अर्थ है कि शरीर से नहीं तो वाणी और मन से स्वधर्म का पालन करें। कायेन मनसा वाचा केवलैरिन्द्रियैरपि योगिनः कर्म कुर्वन्ति– कह कर कई प्रकार से कर्म करने का विधान गीता मे है। इसी जन्म मे , चित्तशुद्धि पर्यन्त,कर्म करने के लिए जिजीविषा रखना शास्त्रादेश है।

जीवन मे विफलताओं और समस्याओं को देखकर इसे समाप्त करनेवाले कायर तो हैं ही स्वयं अपने ही शत्रु है। वे वर्तमान से अधिक भयंकर कष्टों को स्वयं बुलाते हैं। उनको ईशोपनिषद के निम्नलिखित मंत्र पर श्रद्धा करनी चाहिए-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।

अर्थात आत्महत्या करने वालों की घोर दुर्गति होती है। आत्महत्या भी कई तरह से होती है। जीवन का कुछ उदयेश्य है। उसे छोड़कर विपरीत जाना या उसका समापन ,दोनों ही पतन के मार्ग हैं। मनमानी धर्म और सुरक्षा के उपाय खोजना हमारी विपत्तियों का कारण है। हम अपने धर्मशास्त्रों को जीवन का मार्गदर्शक बनाये रक्खें तो सभी संकटों से बच सकते हैं। निरापद और उर्ध्वगामी रहकर जीने के लिए ही' जीवेम शरदः शतम् 'का उपदेश है। शिक्षानीति मे ऐसे जीवन के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया जाय।।

[141]
चित्तशुद्धि

आध्यात्मिक साधना मे सफलता के लिए अनिवार्य अंग चित्तशुद्धि है। इसी को अन्तःकरण की पवित्रता कहते हैं। इससे मन की एकाग्रता और बुद्धि की निर्मलता प्रत्यक्ष होती है। मन स्वयं बुद्धि में प्रविष्ट हो जाता है। इस स्थिति की पराकाष्ठा होने पर विवेकख्याति की उपलब्धि होती है। वाह्य साधना की सीमा यही है। इस स्थिति मे नित्यानित्य विवेक,ईहामुत्र भोगत्याग तथा षट्सम्पत्ति (शम,दम,उपरति,तितिक्षा समाधान एवं श्रद्धा), इन तीन तरह के साधनों की प्राप्ति सभी साधकों को होती है। अद्वैत साधकों का लक्ष्य जीवन मरण के चक्र से मुक्ति, आत्मनिष्ठता या विदेह मुक्ति होती है। अतः,उनको,उपर्युक्त तीन साधनों के अतिरिक्त मुमुक्षुत्व की भी प्राप्ति होती है। ईषद् द्वैत (अविद्या की भावना के अवशिष्ट रहने के कारण सगुण के उपासक भक्त ,बोधिसत्वत्व को आदर्श मानने वाले बौद्व या योग-तंत्र की साधना से प्राप्त सिद्धियों से लोकोपकार के इच्छुक साधक जन्ममृत्यु के चक्र में ही रहते हैं। जीवन की साधना में, सज्जनों द्वारा आदरणीय किसी भी स्थिति को प्राप्त करने के लिए चित्तशुद्धि आवश्यक है। इस शास्त्रीय पक्ष का विनियोग नीचे दिया जारहा है।

चित्तशुद्धि के लिए साधना सदाचार पालन से आरंभ होती है। इसके बाद,कला और विज्ञान के अन्य विषयों के साथ जीवन का मूल्य और उसकी प्राप्ति तथा सुरक्षा के उपाय का ज्ञान भी होना आवश्यक है। मूल्यबोध की नीव बाल्यावस्था मे ही डाली जाती है।

बड़ा होने पर स्वधर्म के निर्धारित करने और उसके पालन से मूल्यों की सुरक्षा की जाती है। निष्काम रहकर स्वधर्म के पालन करने के साथ, निरहंकार रहने के लिए कृताकृत का ईश्वरार्पण करते हुए,चित्तशुद्धि तक की कामना करनी चाहिए।

आजकल समाज सेवा का कार्य बहुत शंकास्पद होगया है। किन्तु, इस कार्य मे सत्य का समर्थन और असत्य के विरोध के साथ समाज का मार्गदर्शन करना ही जिसका स्वधर्म है,वह सदैव प्रशंसनीय और विश्वसनीय है। इससे भी चित्तशुद्धि के साथ जीवन की साधना पूर्ण हो सकती है। जो अपने प्रति ईमानदार है वह सबकी दृष्टि में ईमानदार बन जाता है।

[142]
परम प्रिय सम्पत्ति

प्रत्येक योनि के प्राणी को जीवन प्रिय होता है। इस अभिनिवेश से सभी ग्रस्त होते हैं। विकसित कोटि के जीवों के लिए प्रिय पदार्थों की अधिकता होती जाती है। उनमें परम प्रिय का निर्धारण अलग अलग होने लगता है। आहार, निद्रा, भय,मैथुन इन चार को ही सर्वस्व मानने वाले अधिकांश प्राणी हैं। इस दृष्ट जगत में मनुष्य सबसे विकसित योनि का प्राणी है। उसके लिए परम प्रिय पदार्थ,स्वभाव और योग्यता के कारण भिन्न-भिन्न होते हैं। उन पदार्थों का वर्गीकरण धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष-इन चार कोटियों में किया गया है। काम और अर्थ को ही सर्वस्व मानने वाले मनुष्य अधिक है। उच्चतर मूल्यों के इच्छुक मनुष्य धर्म और मोक्ष का चिन्तन करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद मे, याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को बताया कि आत्मतत्व ही सबके लिए परम प्रिय पदार्थ है। इस रहस्य का ज्ञान मनुष्य को ही होना संभव है। निर्धारित सत्य यह है कि व्यवहार जगत में प्रतिष्ठति होने के लिए धर्म (सार्वभौम)और आध्यात्मिक जगत में चरमोपलब्धि हेतु मोक्ष के मार्ग अभीष्ट हैं। धर्म का आधार जीवन के उच्च मूल्यों की रक्षा है। मूल्य निर्धारण के लिए धार्मिक मान्यताओं को आधार बनाना श्रेयस्कर है। इसी से समाज सेवा भी संभव है। एक स्थान पर जे एल नेहरू ने लिखा है-मैन्स डीयरेस्ट पजेशन इज हिज लाइफ। यानी, मनुष्य का प्रियतम धन उसका जीवन है। यह प्रियतम तो नहीं किन्तु प्रथम आवश्यक धन है। मनुष्यत्व की ऊंचाई पर रहने के लिए जीवन के उच्च मूल्य ही प्रियतम होने चाहिए। उनकी रक्षा के लिए जीवन का उत्सर्ग करना ही प्रशंसनीय है। स्वतंत्रता संग्राम मे जीवन का मोह छोड़नेवाले नेता जी सुभाष आदि,प्रथम कोटि के प्रिय पदार्थ– -जीवन, का मोह छोड़कर, उच्चतर मूल्य का वरण करने के कारण, हमारी दृष्टि मे, महामानव थे। मूल्यों के लिए जीना ही जीवन है।

[143]
आत्मज्ञ की उपासना

स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम,यत्र विश्वं निहितं गुहायां।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ।। तृतीयमुण्डक,खण्ड 2/1

भाव है कि– वह ब्रह्मवेत्ता परब्रह्म के उस सूक्ष्मतत्व को जानता है, जिससे यह विश्व उद्भासित होता है। ऐसे ज्ञानी की उपासना (प्रणाम, सेवाभाव और निष्ठा) जो करता है,वह भी ज्ञानी होकर,आवागमन के बीज से रहित होजाता है। अतः निष्काम भाव से ज्ञानी की उपासना करनी चाहिए।

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र। पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्व प्रविलीयन्ति कामाः। तृतीय मुण्डक खण2/2

भाव-ब्रह्मवेत्ता की उपासना कामना की पूर्ति के उद्देश्य से करने पर उन्ही कामनाओं के अनुसार अनेक जन्म होते रहते हैं किन्तु निष्काम होने पर उपासक कृतकृत्य हो जाता है और सारी कामनाएं यहीं विलीन हो जाती हैं। ब्रहमज्ञान ही ब्राह्मण का परम उद्येश्य होता था और अब भी होना चाहिए। सिद्ध न होकर साधक ब्राहमण भी सम्माननीय होता है। पवित्रता पूर्वक लोकयात्रा करनेवाला ब्राहमण ही है। मुक्त होने पर उसका सम्मान करनेवाले केलिए उसके पुण्य तथा निरादर करनेवाले के लिए उसके पाप स्वतः वितरित हो जाते हैं ऐसा बताया गया है। अतः अपना कल्याण चाहने वाले को ब्रह्मकर्म करनेवाले का अपमान नहीं करना चाहिए।

[144]
दान व अवदान

लोकमान्यता या महापुरुषत्व की ख्याति के सर्वमान्य लक्षण दान और अवदान हैं। इन महत्वपूर्ण कार्यों के प्रभाव का क्षेत्र और काल जितना बड़ा होगा,उतना ही महान और कालजयी व्यक्तित्व के रूप मे उस पुरुष की ख्याति होती है। परिवार से लेकर समस्त विश्व क्षेत्र, और तत्काल से लेकर अनन्त काल तक की अवधि संभव है।

दान केलिए शिवि, दधीचि हरिश्चंद, बलि,कर्ण आदि विख्यात हैं। सुकरात ईसा मसीह आदि ने भी मानवता के लिए प्राणदान ही किया था। इस विषय मे देश काल और पात्र का ध्यान देना महत्वपूर्ण सतर्कता है। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्– -गीता। अभयदान देना बहुत बड़ा दान है किन्तु चोर और कुपथगामी को अभयदान देना अनर्थ है। सात्विक भावना के साथ,यथाशक्ति या सर्वस्व देने वाला महान होता है। अपनी साधना और ज्ञान के दवारा मानव के लिए विभिन्न विषयों पर शास्त्रीय ज्ञान देनेवाले या अपने आचरण से नीति और धर्म का मानदण्ड स्थापित करनेवाले स्थिर काल के लिए महापुरुष मान्य होते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम यहां जन्म लिए हैं। ऐसे लोगों के मानसिक, वाचिक और शरीर से आचरित कर्म मानवता के लिए अवदान कहे जाते हैं। विश्व का सबसे धनी व्यक्ति होना, नोबेल पुरस्कार पाना, बड़ा से बड़ा पद पाना जैसी तात्कालिक प्रतिष्ठा की बातें एकदम तुच्छ है। उपरोक्त मानदंडों के अनुरूप होनपर ही इनका महत्त्व है। बड़े लोग भी कहीं न कहीं घोर बेइमान होते देखे जारहे हैं। रतन टाटा ने व्यवसाय के साथ उदारता और देशभक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करके एक अच्छा संदेश दिया है। यह एक तात्कालिक सराहनीय आदर्श है। सद्गुणों का अनुकरण करनेवाले ईमानदार और

योग्य लोगों के पैदा होने और उनको प्रतिष्ठित करने पर ही दान और अवदान देनेवाले महापुरुष उत्पन्न होंगे। जगद्गुरु होने का यही साधन है।

[145]
व्यक्तित्व का आकलन

किसी व्यक्ति को महापुरुष या निन्दनीय कहने के लिए उसके सम्पूर्ण जीवन काल के क्रियाकलापों को जानना आवश्यक है। त्वरित निर्णय गलत होसकता है। जीवन के आदि, मध्य और अन्त मे एक ही व्यक्ति कई रूपों में दिखाई पड़ सकता है। लड़कपन मे पुरस्कार पानेवाला , वृद्धावस्था मे जेल जा सकता है। अपनी कमजोरियों को ,बहुत दिनों तक छिपानेवाले का मूल स्वभाव वृद्धावस्था में प्रगट हो जाता है।

'उघरहिं अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू ।। '-रामचरित मानस।

ईसा मसीह ने कहा– डोन्ट जज अदर्स लेस्ट ई नाट बी जज्डा। इस कथन का अर्थ यही है कि जीवनकाल मे किसी के विषय मे, निन्दा या स्तुति का प्रचार न करें। उसके चरित्र को आदरणीय या निन्दनीय समझने के लिये,अन्त तक प्रतीक्षा करना पड़ेगा। महापुरुष या पापिष्ठ, शीघ्रता मे न घोषित किया जाय। तात्कालिक अवस्था के अनुसार व्यवहार किया जाना उचित है। उपर्युक्त तथ्यों का उपयोग,आजकल समाज के लिए बहुत आवश्यक है। युगपुरुष, राष्ट्रपिता,भारतरत्न,महामानव,साक्षात भगवान आदि उपाधियों की दौड़ में शामिल लोगों से इस प्रचार से प्रभावित करनेवाले युग मे ,सावधानी अपेक्षित है। विदेशों में भारतीय धर्मो का प्रचार करनेवाले भी शंकास्पद हैं। अपनी संस्कृति मे उत्पन्न बुराइयों तथा पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार करके धनार्जन में भी बहुत लोग लगे हैं। उनसे भी सतर्कता अपेक्षित है। सब होने पर भी देश मे,महापुरुष के पैदा होने की संभावना को अस्वीकार न किया जाय। ऐहैं कबहुँ बसन्त ऋतु।।

[146]
संतोष की बात

जो स्वयं साक्षी है और न्यायाधीश भी है,उसके न्यायालय में वाद प्रस्तुत करें। साक्षी के आधार पर निर्णय देनेवाले और आत्मा के शब्दो के प्रति असंवेदनशील न्यायाधीश के यहाँ जाने पर भरोसा न करें, न्याय मिलने मे संदेह है। जो सर्वथा समर्थ है और तत्काल अभयदान दे सकता है, उसको बुलाएं। निर्भीक और निष्पक्ष पुलिस के न होने पर भरोसा न करें, संरक्षण संदिग्ध है। जो योग्यता के अनुसार स्वयं देने के लिए विख्यात है,उससे याचना करें। जो हितकर होगा वह मिल जायेगा। सिफारिश और जुगाड़ पर देने वालों से कुछ पाना भी व्यर्थ है। इसी तरह वोट का जुगाड़ करनेवाली सरकारों से नहीं, जहाँ भी समस्या हो,कुछ पाने केलिए अपने पौरुष,स्वाभिमान तथा जगन्नियन्ता का आश्रय लिया जासकता है। व्यावहारिक औपचारिकता करने मात्र पर जो मिल जाय उसे ईश्वर का प्रसाद मानें। व्यक्तिगत जीवन के लिए इस साधना के बाद सार्वजनिक जीवन में संघर्ष हेतु आत्मबल मिलता है। सुखपूर्वक जीने का यह सरल राजमार्ग, एक शर्त के साथ, सब के

लिए खुला है। शर्त यह है कि अपना हाथ और मन स्वच्छ होना चाहिए। 'क्लीन हैड्स के साथ उस न्यायालय में जाना पड़ता है। सदोष व्यक्ति वहां से संरक्षण नहीं पा सकता है। नैतिकता का सहारा लें। 'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्रन भावा।। '-तुलसीदास।

[147]
उचित ओषधि

वृक्ष की जड़ मे दीमक लगे हों तो कीटनाशक का छिड़काव करने पर,वह शीघ्र सूख जाता है। जड़ में दीमक की दवा डालना ही उचित उपचार है। निरोग वृक्ष ही फल दे सकता है। आज का समाज मृतप्राय है । सुशिक्षा द्वारा नैतिक मूल्यों की स्थापना स्वाभिमान और संस्कृति की सुरक्षा ही संजीवनी दे सकती है। समाज का मूल आधार शिक्षा ही है। उचित उपचार न करने पर इस विषय मे हो रहे प्रयोग निष्फल हैं। कुसंस्कृति का प्रचार करनेवालों,सिनेजगत आदि पर कोई नियंत्रण नहीं है। कानूनों के थोपने से समाज की जीवन शक्ति शुष्क होती जारही है। संजीवनी शक्ति को प्रबल करने के लिए, समाज के लिए आकर्षण बनी कुसंस्कृति के रोग का नाश करना पड़ेगा। सुशिक्षा ही ,जड़ को नीरोग बनाने की उचित ओषधि है। निरोग समाज ही शान्ति-व्यवस्था, विकास आदि तथा महापुरुष दे सकता है।

[148]
आजकल की स्वनिर्मित समस्या

नारी की सुरक्षा के लिए उपाय सोचना ठीक है, किन्तु किसी आपराधिक मामले में राजनैतिक लाभ लेने का प्रयास घोर निन्दनीय है। गैंगरेप आदि तरह के अपराध रोकना किसी दल के लिए संभव नहीं है। समस्या की जड़ में जाना चाहिए। वास्तव मे व्यवस्था को सही करने के इच्छुक लोगों को सस्ते मनोरंजन के साधनों, प्रेमप्रपंच के प्रचारक और अश्लील नाटकों पर रोक लगाने तथा समाज को गलत दिशा देने वालेअभिनेओं और नेताओं को सम्मानित करने के बजाय उनका तिरस्कार करना होगा। सिनेमा और टीबी किसी भी नशे से अधिक बेग से समाज को दूषित कर रहे हैं। इनके प्रभाव से बचने केलिए स्वयं मर्यादा में रहकर सुरक्षित होने की शिक्षा ,बालिकाओं को देनी पड़ेगी। उनके स्वच्छंद होने पर कोई भी सुरक्षा नहीं दे सकता है। सभी तरह के सामाजिक कार्यकर्ताओं और नेताओं का सम्मिलित प्रयास इस दिशा मे होजाय तो बलात्कार ही नहीं कई तरह के अपराधों पर शीघ्र अंकुश लग सकता है। इसके लिए एकमत न होना भी अपराध बढ़ाने में सहायक है। समस्या को हमारी व्यवस्था ने पैदा किया है। आत्मनिरीक्षण जरूरी है। समाधान के लिए सदिच्छा होनी चाहिए।

[149]
त्रिविध तप

कुछ पाने के लिए या विपत्ति के निवारणार्थ तपस्या की जाती है। राजदण्ड या यमदण्ड से बचने के लिए किए जानेवाला प्रायश्चित भी एक तरह की तपस्या है। इन्द्रत्व से लेकर समस्त भौतिक सुख तपोबल के फल हैं। यह सब राजस कोटि के तप से साध्य हैं। तामस कोटि की तपस्या दूसरों को कष्ट देने, अत्याचार, अधर्म और अनाचार के प्रसार केलिए होती है । यह आसुरी तपस्या कही जाती है। शम्बूक की कथा तो रामायण में ,प्रक्षिप्त अंश लगती है किन्तु इससे यह सन्देश देने का प्रयास है कि प्रमाणित होने पर आसुरी तपस्या में विघ्न डालना उचित है। तामसी तपस्या अधम कोटि की होती है अतः त्याज्य है। राजसी तपस्या लोककल्याण या भौतिक सुख के लिए होती है। मध्यम कोटि की ऐसी तपस्या शास्त्र विहित है। लीसरी कोटि की सात्विक तपस्या आत्मकल्याणार्थ तथा व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी होने के कारण उत्तम मानी जाती है। गीता मे सात्विक तपस्या का विवेचन सत्रहवें अध्याय मे है। निष्काम सात्विक तपस्या का फल उच्चतम स्थिति को प्राप्त कराता है। गीता मे वर्णित, कायिक,वाचिक और मानसिक भेद से वर्गीकृत तीन प्रकार की सात्विक तपस्या यहां प्रस्तुत है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।

इन श्लोकों का अर्थ सहजगम्य है। इनमें निहित शिक्षाओं का अनवरत स्मरण तथा अनुपालन लोक- परलोक दोनों के लिए सार्थक है। तप का महत्व सर्वत्र बताया जाता है। अतः इस सहजतम तपस्या का विधान सर्वजनसुलभ कराने हेतु प्रस्तुत किया गया।

[150]
सात्विक तपस्या

गीता मे सात्विक तप के विषय मे,सत्रहवें अध्याय के, जो तीन श्लोक पूर्व के संदेश में उल्लिखित है वे यम और नियम के नाम से विख्यात महाव्रतों से भिन्न नहीं हैं। उन्हीं व्रतों का विस्तार,कायिक,वाचिक और मानसिक रूप मे वर्गीकृत है। यह व्रत ही धर्म के स्तम्भ हैं। यह प्रयोग के द्वारा परीक्षणीय नहीं हैं वल्कि श्रद्धापूर्वक व्रत के रूप मे अनुपालनीय हैं। व्रत के रूप मे स्वीकार करने पर,प्रायश्चित के भय से,कभी भी विचलन नहीं होता है। प्रयोग के रूप मे स्वीकार करनेवाले अवसरवादी होते हैं और बारबार छोड़ते पकड़ते रहते हैं। यह व्रत जीवन को सात्विक ढंग से जीने की कला का अभ्यास कराने के लिए हैं। धैर्य के साथ इन व्रतों को करना ही सात्विक तप है। विपत्ति मे भी इन व्रर्ता का

पालन करलेने पर ऐसे संस्कार जाग्रत होजाते हैं जो आजीवन मार्गदर्शक बन सकते हैं तथा जीवनशैली बदल सकते हैं। इसका अनुभव कोई भी कर सकता है। उपर्युक्त शास्त्रानुमोदित संदेश का पालन जीवन मे किसी समय आरंभ करना हितकर होगा। बाल्यावस्था मे ही इस विषय की शिक्षा दृढ़ करदीजाय तो अनेक सर्वमान्य महापुरुष पैदा हो सकते हैं.युग परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए विशुद्ध भारतीय शिक्षानीति से बहुत कुछ स्वीकार करना पड़ेगा।

[151]
धर्माचार्यो की उपयोगी भूमिका

देश में पांच जगद्गुरु शंकराचार्य के पीठ हैं,अन्य आचार्यों के भी अनेक प्रतिष्ठित पीठ हैं तथा बहुल से अति सम्पन्न मठ और आश्रम हैं जो धर्म और संस्कृति की सुरक्षा के निमित्त स्थापित किये गये हैं। इन संस्थाओं का सदुपयोग नहीं होपारहा है। राजकीय हस्तक्षेप तथा राजनैतिक गतिविधियों के कारण, यह अपने उद्देश्य से भटक रही हैं। इस समय मृतप्राय समाज को संजीवनी देने के लिए यह संस्थाएं बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा की नीतियों में सुधार के अनेक उपायों के सुझाव दिये जाते हैं किन्तु राज्याश्रित होने के कारण सभी काल्पनिक(यूटोपियन),असंभव और उपेक्षणीय मानलिये जाते हैं। ऐसी स्थिति मे धर्माचार्यों को स्वधर्म के पालन मे तत्पर होने के लिए प्रेरित करना,उचित विकल्प है। सभी सक्षम संस्थाओं में कम से कम दश योग्यतम विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय। उन्हें संस्कृति और संस्कृत के साथ समस्त आधुनिक विद्याओं की शिक्षा दी जानी चाहिए। बाल्यावस्था से माध्यमिक विद्यालय तक के स्तर की शिक्षा दवारा उन्हें संस्कृति, सटाचार, तपस्या और जीवन के वास्तविक मूल्यों का बोध करा दिया जाय। इसके बाद रुचि और योग्यता के अनुसार किसी दिशा मे जाने की सुविधा दीजाय। ऐसे स्नातक तैयार होने पर शिक्षा , समाज तथा राष्ट्र के वर्तमान संकट का समापन हो जायेगा। पं.मदनमोहन मालवीय ने इसे सोचा था किन्तु उनका विद्यालय राजाओं के धन से बनकर तथा राजकीय नियंत्रण मे होने के कारण,उद्येश्य की पूर्ति नहीं कर सका। अब पुनः एक मालवीय या उनके संकल्पशक्ति के उत्तराधिकारी की आवश्यकता है जो धर्माचार्यों को अपनी शक्ति तथा सम्पत्ति का सदुपयोग करने के लिए प्रेरित कर सके। किसी धर्मधुरीन केलिए यह कार्य सुकर होगा। पवित्र धन का विनियोग पवित्र कार्य मे होने पर सुपरिणाम अवश्य होगा।

[152]
रामोद्विर्न भाषते

बाल्मीकीय रामायण मे, कोपभवन मे कैकेयी द्वारा वर मांगने का प्रसंग, अनेक तरह की शिक्षायें देने के कारण ,बड़ा महत्वपूर्ण है। उसमे से एक अंश यहां प्रस्तुत है। अचेत पड़े हुए दशरथ तथा सामने बैठी हुई कैकेयी के समक्ष बुलाने पर, राम उपस्थित हुए।

पिता की दुर्दशा का कारण माता कैकेयी से पूछा कैकेयी को शंका थी कि राम को बन जाने के लिए दशरथ कह नहीं पायेंगे और हमारे कहने पर राम बन नहीं जायेंगे। अतः उसने राम से प्रतिज्ञा कराने का उपाय सोचा। वह बरयाचना की बात बताने में विलम्ब करते हुए, राम को भावाभिभूत करने मे सफल हुई। उस समय राम ने कहा-

तद्ब्रूहि वचनं देवि राजो यदभिवांक्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नभाषते।।

हे देवि विश्वस्त होकर बताओ कि राजा की क्या इच्छा है? मै उसे करूंगा। राम दो तरह की बात नहीं करता है,जो कहा वही करना उसके लिए स्वाभाविक है। तथापि तुम्हें विश्वस्त करने के लिए प्रतिज्ञा भी कर रहा हूं। 'दशरथ की विवशता को जानकर, कैकेयी के कहने से ही, राम बन चले गये।

इससे महापुरुष और विश्वसनीय बनने लिए लक्षण स्पष्ट हैं। मातापिता को संतुष्ट रखना प्रथम धर्म है। सत्य पर दृढ़ रहना,अपनी कही बात को न बदना (प्राण जाइ बरु बचन न जाई) विश्वसनीय होने के लिए अनिवार्य है। रामराज्य की आधारशिला राजा की विश्वसनीयता ही है। इसके बिना सारे नियम और कानून निष्प्रभावी हो जाते हैं। विश्वसनीय होने पर श्रद्धा पैदा हो जाती है,तब आज्ञापालन स्वेच्छया होने लगता है।

[153]
त्रिस्तरीय न्याय

सामान्यतया न्याय की व्यवस्था के लिए न्यायालय को ही उत्तरदायी माना जाता है। वास्विकता यह है कि न्याय का अन्तिम विकल्प न्यायालय है जिसको प्रभावसम्पन्न होने के लिए अनुकूल परिस्थितियां आवश्यक हैं। अतः, न्याय की व्यवस्था तीन स्तरों से की जाती है। प्रथमतः,संविधान और नियम बनाते समय, अन्य किसी बात को महत्व न देकर केवल देशहित और जनहित को दृष्टि में रखना चाहिए। वहां न्याय होने पर नीचे के स्तरों मे स्वतः भी न्याय संभव है और वहाँ अन्याय होने पर, अन्य स्तरों पर अन्याय अनियंत्रित हो जाता है। द्वितीय कार्यपालिका का स्तर है, जहाँ न्यायोचित, निर्णय लेना चाहिए। इससे असन्तोष नहीं रह जाता है। इस स्तर पर त्वरित दण्डव्यवस्था से भी,न्याय की सुरक्षा हो सकती है। इन दोनों स्तरों से न्याय होने पर न्यायपालिका का कार्यभार कम हो जाता है। तृतीय,न्यायालय का स्तर है जो अन्तिम है। उपर के दोनों स्तरों मे अन्याय और अनीति के व्याप्त होने पर यह स्तर भी अनियंत्रित और भ्रष्ट हो जाता है। उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार.शान्तिव्यवस्था,विकास,न्याय की प्रतिष्ठा आदि के लिए तथा समाज और राष्ट्र के हित मे आमूल संशोधन अपेक्षित हैं। सत्ता,दल, जाति ,धर्म आदि का मोह छोड़कर केवल समाज व देशहित को दृष्टि मे रखकर कार्यवाही आवश्यक है। स्वतंत्रता का मूल समता है तथा विश्वसनीयता का आधार सत्य और न्याय हैं।

[154]
दुर्लभ दवा

'मास्क लगाना,दूरी रखना हाथ का धोना ,फिर कारोना?' यह जुमला अच्छा लगता है। सवर्ण लोग तो अपनी मर्यादा की सुरक्षा ,योग्यता की परीक्षा और समता के मौलिक अधिकार से अच्छी तरह हाथ धोचुके हैं,सामाजिक दूरी कानूनों के प्रभाव से बढ़ती जारही है,अपराध की दुनिया में जाने को तत्पर लोग मुहं छिपाने को स्वतः मास्क लगा रहे हैं। अतः ,करोना रहे या न रहे,सवर्णो का रोना तो रहेगा ही। जुमले से उनको संतुष्टि नहीं मिलेगी। जब तक दवाई नहीं तब तक ढिलाई नहीं। दोनों की दवाएं परमावश्यक हैं।

[155]
राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति

राष्ट्र और देश, दोनों शब्दों के अर्थ में भिन्नता है। राष्ट्र में इतिहास संस्कृति, परम्परा, महापुरुषों की लोकगाथा, भाषा, जीवन के मूल्य तीर्थ तथा सांस्कृतिक स्थान, पारिवारिक-व्यवस्था और नारी की भूमिका, सामाजिक स्थिति,साहित्य आदि प्रमुख घटक हैं। देश से भौगोलिक स्थिति, उसकी सीमा तथा भूभाग,जलवायु बाह्य तथा आन्तरिक सुरक्षा, आर्थिक व्यवस्था, शासनव्यवस्था, व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध, वर्तमान सभ्यता, आदि का बोध होता है।

समाज मे सौमनस्य,शान्तिव्यवस्था,आर्थिक विकास,बौद्धिक उत्कर्षके साथ लेखन और अन्वेषण,जीवन के उच्च मूल्यों की स्थापना, सशक्त तथा विदेशों में प्रभावशाली बने रहने के लिए राष्ट्र तथा देश दोनों से प्रेम प्रत्येक नागरिक मे,आवश्यक है। प्रदेशी भाषा तथा जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि को अधिक महत्व देने के कारण सम्पूर्ण समाज व देश अस्तव्यस्त हो जाते हैं। यह समस्या विदेशियों की विभाजनकारी नीति से उत्पन्न हुई है । अदूरदर्शिता के कारण अब भी वही नीति चली आरही है। राजनीति ही इसके लिए उत्तरदायी है।

राष्ट्रप्रेम के बिना देशभक्ति संभव नहीं है। छद्म राष्ट्रवाद के नाम पर सत्ता को पाने के प्रयास से समस्या बढ़ती है। सभी नागरिकों को राष्ट्रप्रेमी बनाना संभव है। इसके लिए समता का व्यवहार तथा कठोर दण्ड दोनों का प्रयोग ,निष्पक्ष होकर, करना पड़ेगा। प्रशासनिक व्यवस्था मे बड़े परिवर्तन करने पड़ेंगे। नवयुवकों तथा प्रबुद्ध जनों का आक्रोश नियंत्रण में है ,तबतक में देश के हित मे सभी दलों को,सत्ता का लोभ छोड़कर,नैतिक राजनीति आरंभ करनी चाहिए। इस उद्देश्य से.सर्वदलीय चिन्तन का एक स्थल स्थापित करना, सत्तादल या किसी समर्थ व्यक्ति की पहल से संभव है।

[156]
राष्ट्र की सुरक्षा

सभी प्राणी संकटों से मुक्ति और सुख चाहते हैं। उनके उद्देश्यों मे,मात्र इतनी ही समानता है। सबके संकट और सुख का स्वरूप भिन्नभिन्न होता है। अतःव्यक्ति,जाति,

सम्प्रदाय के भेद से परस्पर असहमति स्वाभाविक है। इनमें सर्वत्र एकता का प्रयास व्यर्थ है। ऐसीस्थिति मे,सभी तरह के संगठन,अपनी सीमा में स्वतंत्र रह सकते हैं किन्तु वृहत् समाज और देश के परिप्रेक्ष्य मे सबको हिन्दुस्तानी या भारतीय(राष्ट्रवादी)बनाना पड़ेगा। यह काम दुस्कर है। व्याधि के अनुसार ओषधि का प्रयोग करना ही सार्थक है।

देश मे जितनी समस्यायें हैं,सबके मूल मे जातिवाद एवं आरक्षण,सम्प्रदायवाद और आतंक तथा प्रदेशवाद हैं। आरक्षण और मुफ्तखोरी को समाप्त करके शिक्षा और आत्मनिर्भरता के उपायों से दलितों और पिछड़ों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जासकता है। राष्ट्रीय भावना के प्रबल करने से प्रदेशवाद पर नियंत्रण संभव है। यह दोनों समस्याएँ आन्तरिक हैं और अदूरदर्शिता के कारण आत्मघाती हो गई हैं। इनका निराकरण अपेक्षाकृत आसान है। तीसरी समस्या (सम्प्रदायवाद) आन्तरिक के साथ ही बाहय प्रभावों के कारण जटिल होगई है। इस पर गंभीर चिन्तन आवश्यक है।

भारतीय मुसलमानों में हिन्दुस्तान का डीएनए है। इनमेंसे अधिकांश कुछ समय पहले हिन्दू ही थे। इनके परिवारों में अब भी हिन्दू संस्कार जीवित हैं। अन्य देशों के अरबी मुसलमानों से भिन्न यहां के मुसलमान हैं। देहातों मे,जहाँ राजनीति का प्रकोप नहीं है, हिन्दू व मुसलमान सौमनस्य तथा परस्पर सहयोग से रहते हैं। विदेशी धन तथा स्वार्थ की राजनीति से कुछ मुसलमान अपने सम्प्रदाय वालों को बहकाकर,आतंकी बना रहे हैं। इसके लिए धर्मस्थलों का दुरुपयोग होता है। आन्तरिक या सीमा की सुरक्षा के लिए सभी सम्प्रदायों के धर्मस्थल अनवरत केमरा की कैद तथा प्रशासनिक निगरानी में रक्खे जाय । देशद्रोह संबंधी कानून को हर स्तर के व्यक्ति के लिए व्यापक और कठोर करना पड़ेगा। दण्ड की व्यवस्था के साथ ही, समझदार मुसलमानों को अपने सम्प्रदाय के लोगों को हिन्दुस्तानी मुसलमान बने रहने की शिक्षा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

मुसलमानों को इस देश से कोई निकाल नहीं सकता है। इसके साथ ही, सांस्कृतिक पहचान के साथ भारत की अस्मिता की सुरक्षा परमावश्यक है। अतः शान्तिव्यवस्था विकास एवं राष्ट्र के हित के लिए वोट की राजनीति छोइकर, सभी दलों को एक मंच पर आना, समय की मांग है। आरक्षण के सहारे खड़े,जाति के आधार पर बने दलों का अस्तित्व समाप्त करना आवश्यक है। अंग्रेजों की राजनिति से उत्पन्न,इन समस्याओं का निदान शुद्ध भारतीय राजनीति से ही होगा।

[157]
राष्ट्र का सशक्तीकरण

इस समय विश्व मे सबसे सम्पन्न,विकसित और सशक्त देश अमेरिका माना जाता है। वहां भी, कोई नारी,अबतक मे, राष्ट्रपति नहीं बन पायी। काले नस्ल के नागरिकों मे एकमात्र ओबामा राष्ट्रपति बन सके,वह भी अपनी प्रतिभा और योग्यता से। वहांपर नारी की स्वतंत्रता मे कोई बाधा नहीं है तथा नस्ल या जाति के आधार पर कोई दलित नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास एवं सशक्त राष्ट्र बनने के लिए योग्यतामात्र को आधार मानना अपरिहार्य है। इसके साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि

सामान्यतया नारी की योग्यता पुरुष की अपेक्षा कम होती है। उसकी शारीरक रचना,जिम्मेदारियां सुरक्षाव्यवस्था आदि अनेक कारण हैं जिनके कारण वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं रह सकती है।

इन तथ्यों को आदर देने पर,अपने देश मे,भारतीय नारी का स्वरूप सुरक्षित रखते हुए उनको उचित सम्मान व सुविधा दी जानी चाहिए। आरक्षण की बढ़ती हुई महामारी को तत्काल समाप्त करना अनिवार्य है। इसतरह से न्याय और नीति के व्यवस्थित होने पर, सामाजिक सौमनस्य की स्थापना की जाय। प्रदर्शन से काम नहीं चलेगा। आतंकवाद, भ्रष्टाचार आदि के उन्मूलन के साथ,सशक्त राष्ट्र की कल्पना साकार करने के लिए अनीति का समापन करने का दृढ़ संकल्प ही उचित देश सेवा है। इसी से समाज और राष्ट्र सशक्त बनेंगे।

[158]
प्रजातंत्र और लोकतंत्र

सामान्यतया यह दोनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं किन्तु शाब्दिक व्याख्या करने पर दोनों में बड़ा अन्तर है। प्रजा शब्द से शासित, अधीनस्थ, कमजोर ,पराश्रित तथा हर तरह से दुर्बल जैसा अर्थ निकलता है। जबकि,लोक शब्द व्यापक,प्रबल, सर्वातिशायी, शक्ति और संस्कृति का स्रोत आदि अर्थो को प्रकाशित करता है।

भारत की शासनप्रणाली को प्रजातंत्रात्मक गणराज्य कहा जाता है। चुने हुए कुछ लोगों से शासित होना गणराज्य का लक्षण है अतः गणराज्य कहना उचित है। लेकिन, प्रजा जो स्वयं हर तरह से अशक्त है, वह शासक बन जाय तो मूर्ख, भ्रष्ट या बेइमान गर्णो दवारा नियंत्रित होकर सारा देश असुरक्षित और पतनोन्मुख हो जायेगा। इसीलिए, प्रजातंत्र को मूर्खों की सरकार कहना प्रचलित उक्ति है। आरक्षण की व्यवस्था द्वारा भारत मे, प्रचलित उक्ति कुछ और दुर्गुणों के साथ, सार्थक होगई है। प्रजा को धनबल, बाहुबल, प्रलोभन झूठे आश्वासन, राजकीय धन की मुफ्तखोरी, जातिवाद आदि द्वारा वश मे करके, उनका वोट लेलेना, सशक्त लोगों के लिए आसान है। यही होरहा है। सविधान की उद्देश्यिका मे लोकतंत्रात्मक गणराज्य के स्थापना का संकल्प है किन्तु आरक्षण द्वारा प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था ही रह गई।

देश को वास्तविक स्वतंत्रता दिलाने तथा सही दिशा मे लेजाने के लिए वर्तमान प्रजातंत्र के स्थान पर,आरक्षणरहित शुद्ध लोकतंत्र की स्थापना आवश्यक है। परतंत्रता के समय जिसका स्वरूप निर्धारित किया गया था तथा उसी की आधारशिला पर जो संविधान बना है ,उसमें परतंत्रता के सारे बीज निहित हैं। दोषों को समाप्त करने के लिए आमूल परिवर्तन, संशोधन अपेक्षित हैं। इसके लिए'नैतिक राजनैतिक संगठन' आवश्यक है। तभी भारतीय लोकतंत्र की स्थापना संभव है।

[159]
सत्य और अहिंसा की व्याख्या

धर्मशास्त्र,रामायण, महाभारत,पुराणादि सभी ग्रन्थों मे सत्य और अहिंसा की विषद व्यख्या मिलती है। महाभारत मे विभिन्न तरह के व्यक्तियों और उनकी परिस्थितियों के अनुसार,यह विषय विषदरूप मे वर्णित हैं। व्यक्तिगत साधना, सामाजिक व्यवहार, तथा राजनैतिक व्यवस्था आदि के विषय में परिस्थिति के अनुसार, इनके भिन्नभिन्न स्वरूप व्याख्यायित हैं। कभीकभी सामान्यतया मान्य सत्य और अहिंसा ही असत्य और हिंसा हो जाते हैं। इनका सही अर्थ जानने और उचित प्रयोग करने के लिए हमें उक्त प्रामाणिक ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए। अपनी सुविधा, स्वाभाविक दुर्बलता या अवसरवादिता के अनुसार की गई अशास्त्रीय नई व्याख्या अविश्वसनीय है। किसी अन्य कारण या काकतालीयन्याय से प्राप्त सफलता के आधार पर अपने अपरिपक्व विचारों को प्रामाणिक सिद्ध करना मानव की प्रवृत्ति है। इन्हें स्वीकारने पर विषम परिस्थिति उत्पन्न होना और पतन सम्भव हैं। आर्षचिन्तन की उपेक्षा करके नये प्रयोग करनेवालों पर विश्वास करना मानसिक दुर्बलता है। आजकल पढ़े लिखे लोग भी इस दुर्बलता के शिकार हो गये हैं। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा नहीं करेगा- सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावे।। शास्त्रों में स्पष्ट है कि अहंकार तथा रागद्वेष से रहित होकर ,लोकहित में स्वधर्म का पालन करने में भावना के आधार पर अच्छे-बुरे का निर्णय होता है। हिंसा और अहिंसा दोनों समान रूप से उपयोगी हैं।

यस्य नाहंकृतो वो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वाऽपि स इमान्लोकान् न हन्ति न निबध्यते।। - गीता।

इसी तरह-सत्यं न सत्य खलु यत्र हिंसा– कहकर सत्य को भी भावना और परिणाम से सम्बद्ध किया गया है। सत्य और अहिंसा पर अन्वेषण कार्य इन ग्रन्थों के आधार पर करना अधिक उपयोगी है।

जैन और बौद्ध अहिंसावादियों की व्याख्या और उनके परिणाम का अनुभव हमें है। देश की सामरिक अशक्ति, विदेशी आक्रमण,आर्य जाति का पराभव ,परतंत्रता, भक्तिमार्ग की शरण में जाकर दास्यभाव का स्वीकारना तथा सांस्कृतिक ह्रास यह सब अब तक हमारे देश में विद्यमान हैं। मानसिक रूप से पूरा समाज गुलाम और मृतप्राय है। इस दुरवस्था से मुक्ति के लिए हमें अपने शास्त्रों के अनुसार शिक्षा द्वारा समाज को संजीवनी देनी है। स्वाभिमानपूर्वक रहने के लिए अपनी संस्कृति की रक्षा द्वारा सशक्त राष्ट्र का निर्माण करना है। आर्थिक रूप से कमजोर होने पर भी, रूस सशक्त होने के कारण, विश्व में बहुमान्य है। अहिंसा की शिक्षा को तिरस्कृत करके,हमें आक्रामक होने में सक्षम बनना आवश्यक है। सभी देश ऐसा करने केलिए प्रयासरत हैं। महाभारत मे बताया गया है कि यात्रा न करने वाले ब्राहमण और शिथिल बैठने वाले ,अनाक्रामक क्षत्री के सारे प्रभाव,विद्या और बल को पृथ्वी निगल जाती है। यह नीति प्राचीन होने के कारण ही

नहीं,प्रयोगसिद्ध होने के कारण मान्य है। न्याय की प्रतिष्ठा होने पर सामाजिक सहयोग से यह नीति कार्यान्वित होसकेगी।

[160]
देश के लिए योगदान

अपने देश मे सभी राजनैतिक दल भिन्नभिन्न किन्तु गम्भीर दुर्गुणों से आरोपित हैं। भ्रष्टाचार व दल का हित, सर्वोपरि सत्ता का लोभ यह सब प्रत्येक मे है। देश और समाज का हित प्रदर्शन के लिए प्रचारित हो रहा है। जनता का विश्वास सभी राजनेताओं और दलों से उठ चुका है। थोड़े लोग अभी अग्यान मे हैं जो शीघ ही परिणाम देखकर, सत्य को समझ जायेंगे।

कुछ समझदार और समर्थ लोगों को सामने आना चाहिए। एक नैतिक राजनैतिक दल का संगठन करके जनता का विश्वास जाग्रत किया जाय। विभिन्न दलों मे थोड़े ईमानदार लोग भी हैं जो मजबूरी मे घुटन महसूस कर रहे हैं। वे भी साथ देंगे। ऐसे दल के विषय मे चिंतन करके कुछ साहित्य हमने भी प्रकाशित किया है। राम के सेतुबंध अभियान में गिलहरी की भूमिका मैं भी करूंगा। इस राजनैतिक निशा मे कुछ साहसी, ईमानदार, बुद्धिमान और समर्थ देशसेवकों दवारा आलोक अपेक्षित है। वे इतिहास में अमर हो जायेंगे।

[161]
कंटक-शोधन

देश और समाज मे अशांति फैलाने वाले चोर,डाकू.आततायी, शोषक आदि कंटक कहे जाते हैं। इन पर नियंत्रण करना शासक का मुख्य कर्तव्य है। वर्तमान समय में पूरा समाज कंटकाकीर्ण है। देश को इस स्थिति में पहुंचाने के लिए स्वतंत्रता के कुछ पहले से ही सुनियोजित ढंग से अपनाई गई गलत नीतियां तथा उन्हीं का वर्तमान तक होरहा विस्तार, कारण है। अतः इसका मूल कारण वर्तमान राजनीति ही है। कंटक-शोधन के लिए राजनैतिक परिदृश्य का आमूल संशोधन आवश्यक है। यह कार्य सुनीतिवाली सार्थक राजनीति से ही संभव है। कांटे से कांटा निकाला जा सकता है। विषस्य विषमौषधम्। कमलपत्र की तरह.राजनीति में रहकर, उसके पंक से निर्लिप्त रहनेवाले व्यक्ति कंटक शोधन की नीति कार्यान्वित कर सकते हैं। अर्थ और काम के असंयमित होने पर व्यक्ति,समाज और राष्ट्र सभी में भष्टाचार व्याप्त होजाता है। इस समय समाज के प्रत्येक अंग-व्यवसायी, किसान मजदूर, नारी व पुरुष तथाकथित दलित व सवर्ण, अल्पसंख्यक व बहुसंख्यक,मनोरंजन कर्मी आदि यातो परस्पर संबंधों से असंतुष्ट हैं या शान्तिभंग करने और समाज तथा संस्कृति को अव्यवस्थित करने मे तत्पर हैं। इस स्थिति के बने रहने के लिए, निम्नस्तरीय मनोरंजन कुकर्मो से अर्थार्जन, अष्टाचार तथा विभाजन और वर्ग संघर्ष करके वोट बैंक बनाने और सत्ता प्राप्त करने की कुनीतियां हैं,जो सर्वत्र व्याप्त हैं। इन्हें अनुशासित न करने के कारण समाज कंटकाकीर्ण है। सभी राजनैतिक दल इस दलदल मे

आकंठ निमग्न हैं। नोटा से यह कार्य नहीं होगा। इसका प्रभावशाली निदान करना आवश्यक है। अतः, कंटकशोधन केलिए,नई चेतना देनेवाले एक विश्वसनीय राजनैतिक दल का गठन करना समय की मांग है। इस दिशा मे,साहित्यसृजन तथा कुछ प्रचार द्वारा हमने कार्य आरंभ कर रक्खा है। आगे की योजना है कि नैतिक राजनैतिक संगठन के नाम से,दल का पंजीकरण कराया जाय। आर्थिक संबल न होने पर भी,अपने चरित्र, व्यवहार और नैतिक बल के आधार पर इस महान उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास होगा। आगामी उत्तरप्रदेश के चुनाव में संगठन के झंडे के नीचे, या तबतक पंजीकरण न हो पाने पर स्वतंत्र रूप से ही, संगठन के नीतियों और अनुशासन के अनुसार चलनेवाले प्रत्याशी पूर्वांचल के कुछ जनपदों मे खड़े किए जा सकेंगे। अपने संगठन के उद्देश्यों और कार्यप्रणाली का संदेश विभिन्न माध्यमों से भी प्रसारित किया जाएगा।

यह स्पष्ट किया जा रहा है कि श्री भुवनेश्वरी विद्याप्रतिष्ठान के अन्तर्गत संचालित नैतिक सामाजिक संगठन से इस संगठन का कोई संबंध नहीं रहेगा। व्यक्तिगतरूप से कोई सहभागी रह सकता है।

इस संगठन मे समान विचारधारा का कोई व्यक्ति सम्मिलित हो सकता है। सभी को नैतिकता के पालन का संकल्प लेना आवश्यक होगा। शिक्षक वकील तथा सभी प्रबुद्ध लोगों से इस कार्य मे विशेष सहयोग संभव है क्योंकि उनका सम्बंध समाज के विभिन्न लोगों और विद्यार्थियों से भी रहता है। प्राथमिक स्तर पर इस संगठन को बनाने के लिए सदस्यों के पांच विभाग होंगे– नीतिनिर्धारक (चाणक्य प्रकोष्ठ)2-वैधानिकता परीक्षक (अनुशासन प्रकोष्ठ) 3-प्रचारक कार्यकर्ता (संचार व प्रचार प्रकोष्ठ) 4– कार्यान्वयन (चन्द्रगुप्त प्रकोष्ठ) 5–शुभेच्छु एवं धनदायी (भामाशाह प्रकोष्ठ)। सबका यथायोग्य सम्मान तथा कार्यविभाजन होगा। संगठन के लिए सम्मति एवं सहयोग हेतु सभी को एतदद्वारा आमंत्रण है।

संपर्क सूत्रः 9453361723,9450961736,9354452727,9506773105।।

[162]
व्यक्तिगत साधना और लोकसंग्रह

अनन्तकाल से चली आरही जीव की यात्रा का एक सुखद पड़ाव है जहाँ से वह मनुष्य योनि मे प्रवेश करता है। यहां, व्यक्तिगत योग्यता के समृद्ध होने पर उसे दो मार्ग दिखाई पड़ते हैं– कर्ममार्ग व ज्ञानमार्ग। गीता के संदेश के अनुसार कर्ममार्ग मे कुशलता पाने पर स्वतः ज्ञानमार्ग मे प्रवेश और उससे ब्रह्मात्मैक्य का बोध होजाता है। कर्ममार्ग में कुशलताके लिए व्यक्तिगत साधना के विधान है। इसका आरंभ सदाचार से होता है। इसके बाद स्वधर्म के सम्यक् पालन से,मन की एकाग्रता और बुद्धि की निर्मलता मिलती है। यही योग्यता तत्वबोध, तदनन्तर मुक्ति का कारक है। इस स्तर तक पहुंचने के पहले भी स्वधर्म के अनुसार लोकसंग्रह के कार्य निष्काम भाव से , करने पर कर्म मे कुशलता मिलती है। अतः लोकसंग्रह के कार्य व्यक्तिगत साधना मे बाधक नहीं,साधक हैं। यही कार्य लोकेषणा से करने पर अहकार और साधना में विक्षेप पैदा करते हैं। विक्षेप से

सावधान रहकर,लोकसंग्रह अवश्य करना चाहिए। समाज को शिक्षित करने से ही ऋषिऋण से मुक्ति मलती है। ऋण से मुक्ति बिना मुक्ति की साधना असंभव है। कुछ साधक लोग उपर्युक्त सिद्धांत से सहमत नहीं होते है। वे लोकव्यवहार को साधना में बाधक मानते हैं। हम उन्हें अपूर्ण साधक समझते हैं। पवहारी बावा ने विवेकानंद से कहा था कि सब अपने लिए ही नहीं,कुछ दूसरों के लिए भी करना चाहिए। सही ज्ञानके लिए महापुरुषों की जीवनी का अध्ययन करना चाहिए। इससे रूढिग्रस्त सोच में परिवर्तन संभव है। उन भक्तों की बात तब निरर्थक लगती है जब आत्मकल्याण को भूलकर,लौकिक स्वार्थ के लिए , लोकसंग्रह के नाम पर, लोकेषणा का आचरण किया जाता है। तब,पर उपदेश कुशल बहुतेरे या स्वयं असिद्धः कथं परान साधयति ,जैसी उक्तियाँ सार्थक होती हैं। आदर्श बात यह है कि व्यक्तिगत साधना मे लेशमात्र अनवधान न करके ही लोकसंग्रह के कार्य किये जाय। अपने घर मे दिया सबसे पहले जलाना ही उचित है।। स्वधर्म के सम्यक् पालन से आदर्श स्थिति बनी रहती है। व्यक्तिगत साधना, ध्यान, चिंतन और स्वधर्मपालन सभी श्लिष्ट प्रत्यय हैं।

पंडित मदन मोहन मालवीय इतने बड़े महाममना थे कि जो चाह लिया उसे पूरा किया। उन्होंने सभी को विनम्रतापूर्वक पराजित किया। बीसवीं शदी में उनके समान व्यक्तित्व के नायक केवल तिलक जी थे। दोनों राजनीति और लोकनीति के उपासक थे। भेद यह था कि मालवीय जी की प्राथमिकता समाज के प्रति थी और तिलक की राजनीति के प्रति। हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में स्थायी कीर्तिपताका स्थापित करनेवाले महाममना को आज विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

[163]
प्रेरणात्मक सिद्धांत

अपने निर्धारित पथ पर चलते रहने पर लक्ष्य की प्राप्ति होती ही है। 'चरन्वै मधु विन्दति, इस वेदवाणी मे वैं' शब्द निश्चयार्थक है। यह वाक्य,जीव के लिये इस जन्म या जन्मांतर मे और संस्था के लिये स्वयं या उत्तराधिकारी द्वारा लगे रहने पर सत्य सिद्ध होता है। इस विषय में, आगे दिये, कुछ महापुरुषों के आचरण और चिन्तकों के वाक्य स्मरणीय हैं। कालिदास ने रघुवंशियों का स्वभाव बताते हुये उनके लिए' आफलोदय कर्मणाम्' लिखा है। यह बात हरिश्चंद्र रघु,राम आदि ने अपने जीवनकाल मे प्रमाणित किया। सगर और उनके उत्तराधिकारियों ने,अनवरत प्रयास करके भागीरथी के अवतरण का लक्ष्य चार पीढ़ियों में प्राप्त किया। भलीभांति प्रयोगसिद्ध देखकर ही चन्तिकों द्वारा लिखे गए कुछ सन्देश निम्नलिखित हैंः-

कः इप्सितार्थे दृढ़निश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखो प्रतीपयेत् (कुमार संभव)

अनेक जन्मससिद्धिः ततो याति परां गतिम्। – गीता।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्ति मध्याः।

विघ्नैः पुनःपुनः प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति।।– नीतिशतक।

तप अधार सब सृष्टि– तप से दुर्लभ कछु नाही– तुलसीदास। इस तरह के अनेक वाक्य मिलेंगे। तप का अर्थ है – अनवरत चिन्तन, आचरण, प्रयास। यह अवश्य विचारणीय होता है कि प्रकृति तथा सृष्टिकर्ता के नियमों के अनुसार निर्धारित लक्ष्य की ही प्राप्ति संभव है। बालू से तेल निकालना, बन्ध्यापुत्र को युद्ध मे भेजना, आकाशकुसुम से सुगंध लेना,मृगमरीचिका के जल से प्यास बुझाना आदि के लिए तपस्या व्यर्थ है। अतः विवेकबुद्धि का प्रयोग,लक्ष्य निर्धारण मे,आवश्यक है। भावना के शुद्ध होने पर गलत निर्णय नहीं हो सकता है। शुद्ध सात्विक भाव होने पर स्वार्थ और परार्थ दोनों सिद्ध होते हैं। तदुपरांत सात्विक गुण का भी त्याग होने पर,परमार्थ भी सिद्ध होजाता है। इसके लिए -येन त्यजसि तं त्यज,त्यक्तेन भुजीथा जैसे वाक्य अन्तिम तपस्या के लिए आधारभूत स्मरणीय हैं।

[164]
दो बातेंः-

1- सब का साथ सबका विकास के सिद्धांत की अपेक्षा-परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, का आदर्श समाज और राष्ट्र के हित में है।
2- मन से पूर्ण पापिष्ठ,कर्म से यथासंभव स्वार्थसाधक किन्तु वाणी से आदर्श व्यक्ति बननेवाले को ही मिथ्याचारी (पाखंडी) कहा जाता है। यह लोग कृतघ्न भी होते हैं। अपनी प्रशंसा स्वयं भी करते हैं और इसके लिये धन देकर प्रशंसातंत्र स्थापित करते है। इसके द्वारा सम्मान, संरक्षण और सत्ता भी यही लोग पाजाते हैं। सभी तरह के अपराधों के मूल मे होने के कारण,यह सबसे बड़े अपराधी और देशद्रोही हैं। इन दोनों बातों पर चिंतन और अमल करने पर सुशासन संभव है। वाणी से नहीं, कार्य से प्रभावित करना उचित है।

[165]
गुणग्राहकता का फल

जड़ चेतन गुणदोषमय विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार।। तुलसी दास

गुण और दोष,दोनों सभी पदार्थो मे होते हैं। बुद्धिमान लोग गुणों का संग्रह तथा दोषों का त्याग करते हुए, जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करलेते हैं। गुण और दोष दोनों को जानना आवश्यक है। मूर्ख लोगों को केवल दोष दिखाई पड़ते हैं अतः वे उन्हीं मे लिप्त हो जाते हैं और अपने को तथा दूसरों को भी कष्टों मे डालते हैं। इस विषय मे,स्मरणीय शिक्षाएं हैं– आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः। यानी सत्य के ज्ञान की शिक्षा सब जगह से प्राप्त कर सकें। यह वेदविहित कामना है। अमेध्यादपि कांचनम्– यह स्मृतिवाक्य है। भाव है कि अपवित्र स्थान से भी स्वर्ण को उठा लेना चाहिए। बालादपि सुभाषितम् नीतिवाक्य है। मूर्ख की भी अच्छी बात मान लेना चाहिए।

अच्छी हो या बुरी,उसे स्वीकार करने पर वह बात हमारी निजी हो जाती है। अतः दूसरे का दोष भी हमारा दोष होजाता है और उसका गुण भी हमारा ही गुण होकर, तदनुसार फल देता है। विरोधी के भी गुणों को लेने का प्रयास प्रशंसनीय है। इन्द्र ने प्रहलाद से शील की शिक्षा लिया और स्वयं भी शीलवान हो गए।

[166]

स्वभाव का प्रभाव

स्वभाव ही व्यक्तिकी सबसे बड़ी शक्ति और महत्तम कमजोरी भी है। इसी के कारण आदमी अपने निश्चय पर अडिग रहता है और अनवरत प्रयास से दुस्साध्य कार्य में भी सफलता प्राप्त कर लेता है। यह स्वाभाविक शक्ति है। मनस्वी व्यक्ति के स्वभाव की कमजोरी तब प्रगट होती है जब वह अपने सिद्धान्त पर चलते हुए शत्रु और मित्र मे भेद करना छोड़ देता है। दानबीर बलि, कर्ण आदि और अपनी बात पर अडिग रहने वाले,हरिश्चंद्र आदि,अपने स्वभाव के कारण ही विपत्ति मे पड़ गए। ऐसा होने पर भी, स्वभाविक रूप से निरहंकार रहकर सुकृत करनेवाला व्यक्ति दोनों दशाओं मे सुयश ही पाता है। धर्म केमार्ग पर चलते हुए अच्छे स्वभाव से सदैव लाभ ही है और उस दशा मे यही सत्य है—

मनस्वी मृयते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति।
अपि निर्वणमायाति नानलो याति शीतताम्।।

यानी मनस्वी व्यक्ति कृपण नहीं हो सकता है जैसे आग शीतल नहीं हो सकती।

राजधर्म के पालन में शत्रु और मित्र मे भेद करना उचित है। इन्द्र की यह नीति ही कौटिल्य आदि को भी मान्य है और उस दशा मे सत्य है–

अहो चित्राकारा नियति इव नीतिः नयविदाम्।।

यानी राजनीति मे विविध रूपों को धारण करना पड़ता है। किन्तु धर्म से यह विचलन सत्तासुख के लिए नहीं बल्कि ,प्रजा के सुख और धर्म की स्थपना केलिए होना चाहिए तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किए गए पाप का प्रायश्चित भी करना पड़ता है। वृत्रासुर को छल से मारने के बाद इन्द्र ने कठिन प्रायश्चित किया था।।

[167]

मित्रता की रक्षा

किसी दूसरे की सहायता से ,स्वार्थ की सिद्धि के लिए की गई व्यवस्था ही, मित्रता के रूप में परिणत होजाती है। यह स्वार्थ कुछ पाने या बचाने(योगक्षेम)के रूप में होता है। स्वार्थ की सिद्धि हो जाने या उसकी आशा समाप्त होने पर,खल की मित्रता समाप्त हो जाती है। सज्जनों की मित्रता सप्तपदीन कही गई है-

यतः सतां सन्नतगात्रि संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते– कालिदास।

अतः वे,सात पग साथसाथ चलने मात्र से, उसे सुरक्षित रखते हैं। दिनस्य पूर्वार्धपराध भिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्– यह नीति संत और खल में भेद को स्पष्ट करती है। स्वार्थी या कृतघ्न बनना निन्दनीय है। मित्रता की रक्षा परस्पर आदर देने,सम्मान

पाने में प्रतियोगी न बनने तथा एकदूसरे की कमियों को दूर करने से होती है। कभीकभी मित्रता की रक्षा के लिए दिखावटी क्रोध और भय दिखाने की आवश्यकता भी होती है। राम ने मित्र सुग्रीव को बुलाने के लिए लक्ष्मण को नीतिपूर्ण आदेश दिया– भय दिखाइ लइ आवहु, तात सखा सुग्रीव ।। प्रयासपूर्वक सुरक्षित रखने पर,वृद्धावस्था तक मे,मित्रता स्वाभाविक हो जाती है और यह स्वभाव अगले जन्म में भी प्राप्त होता है। इसीलिए भवभूति ने लिखा—

व्यतिषिजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः,न हि बहिरुपाधीन प्रीतयःसंश्रयन्ते।।

पुनश्च– रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोत्रपि जन्तुः। तत्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि।। -कालिदास।

दो लोगों की स्वाभाविक मैत्री मे, बाहरी नहीं, पूर्वजन्म के संस्कार ही करण होते हैं।

[168]
विवेक का महत्व

आत्मविश्वास होने पर विवेक शक्ति रहती है और साहस तथा धैर्य भी बने रहते हैं। साहस और धैर्य विजय दिलाते हैं। जब,यही साहस और धैर्य अहंकार या आसक्ति के कारण पैदा होते हैं,तो विवेक शक्ति समाप्त हो जाती है। तब अन्दर से धैर्य समाप्त होने पर भी, अहंकार के बल पर उसका प्रदर्शन करते हैं इस दशा मे पहुंचने पर पराजय ही मिलती है। विवेकभष्टानां भवति विनिपातो शतमुखः।।

राम के प्रताप का आकलन रावण को नहीं हो पाया क्योंकि अहंकार और आसक्ति से उसकी विवेक शक्ति समाप्त होगई थी। तभी तो—

असगुन अमित होहि तेहि काला। गनइ न भुजबल गर्व विशाला।।

गयउ भवन अति सोच वस, नींद पड़ी नहिं राति। - आदि कहकर तुलसीदास ने उसको कालविवस बताया। इन अवगुणों का अतिरेक होने पर,जब आदमी महत्वपूर्ण समस्याओं को भी नगण्य समझने का प्रदर्शन करने लगे, तो बुद्धिमान व्यक्ति उसका पतन सन्निकट समझ लेता है।

[169]
आचार तथा अनाचार

आचार से धर्म की रक्षा होती है और धर्म से मनुष्य की रक्षा होती है। अतः,

आचार ही परमधर्म है। आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नान्जयति समूलस्तु विनश्यति। -मनुस्मृति।

इससे मार्गदर्शन मिलता है कि कुमार्ग पर चलने वालों की उन्नति देखकर सन्मार्ग पर चलनेवाले को विचलित नहीं होना चाहिए। समय की प्रतीक्षा करने पर अधर्म का परिणाम यहीं सामने आजाता है। कुमार्गगामी सदैव भयभीत रहता है और एकाएक पतन को प्राप्त करता है। सन्मार्गी निर्भय रहता है और क्रमशः उन्नति को प्राप्त करता है। यह मानने पर सन्मार्ग पर रहने का दृढ़ संकल्प बनेगा।